सूचीपत्र

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

छठा अध्याय

सातवाँ अध्याय

(

विषय

९

भूमिका

जिन सुप्रसिद्ध लेखक बाबू ज्ञानेन्द्रमोहनदास की लेखनी से चरित्र-सुधार की शिक्षा के लिए 'चरित्रगठन' ग्रन्थ निकला है, उन्हीं की पवित्र लेखनी से श्रीवृद्धि की शिक्षा के लिए यह अपूर्व "ऋद्धि" निकली है। ग्रन्थकार ने इस पुस्तक को रच कर लोगों का कितना बड़ा उपकार किया है, यह वर्णनातीत है। हिन्दी में इस बँगला पुस्तक का अनुवाद हो जाने से हिन्दी-साहित्य भण्डार में उस अभाव की पूर्ति हुई है जिसका होना इस समय बड़ा ही आवश्यक था। जो हिन्दी-साहित्य का भण्डार ऋद्धि से खाली था उसे ऋद्धि से भरपूर देख किसे हर्ष न होगा? मैं आशा करता हूँ कि इस ऋद्धि के द्वारा हिन्दी जानने वाले सभी सज्जन कुछ न कुछ अवश्य लाभ उठावेंगे।

संसार से सम्बन्ध रखने वाला प्रायः कोई मनुष्य ऐसा न मिलेगा जिसे ऋद्धि की अपेक्षा न हो। दरिद्र से लेकर कोट्य-धीश तक सभी श्रीवृद्धि की इच्छा रखते हैं। किन्तु इच्छा रखते हुए भी ऋद्धि-साधन का उपाय न जानने के कारण कितने ही लोग सफल-मनोरथ न होकर भाग्य को दोष देते हैं और श्रीवृद्धि के प्रयत्न से विमुख होकर कष्ट पाते हैं। जो लोग भाग्य के भरोसे रह कर दरिद्रता का दुःख झेलते हुए भी ऋद्धि-प्राप्ति के

विषय

...ठवाँ अध्याय

—:o:—

भूमिका

जिन सुप्रसिद्ध लेखक बाबू ज्ञानेन्द्रमोहनदास की लेखनी से चरित्र-सुधार की शिक्षा के लिए 'चरित्रगठन' ग्रन्थ निकला है, उन्हीं की पवित्र लेखनी से श्रीवृद्धि की शिक्षा के लिए यह अपूर्व "ऋद्धि" निकली है। ग्रन्थकार ने इस पुस्तक को रच कर लोगों का कितना बड़ा उपकार किया है, यह वर्णनातीत है। हिन्दी में इस बँगला पुस्तक का अनुवाद हो जाने से हिन्दी-साहित्य भण्डार में उस अभाव की पूर्ति हुई है जिसका होना इस समय बड़ा ही आवश्यक था। जो हिन्दी-साहित्य का भण्डार ऋद्धि से ख़ाली था उसे ऋद्धि से भरपूर देख किसे हर्ष न होगा? मैं आशा करता हूँ कि इस ऋद्धि के द्वारा हिन्दी जानने वाले सभी सज्जन कुछ न कुछ अवश्य लाभ उठावेंगे।

संसार से सम्बन्ध रखने वाला प्रायः कोई मनुष्य ऐसा न मिलेगा जिसे ऋद्धि की अपेक्षा न हो। दरिद्र से लेकर कोट्य-धीश तक सभी श्रीवृद्धि की इच्छा रखते हैं। किन्तु इच्छा रखते हुए भी ऋद्धि-साधन का उपाय न जानने के कारण कितने ही लोग सफल-मनोरथ न होकर भाग्य को दोष देते हैं और श्रीवृद्धि के प्रयत्न से विमुख होकर कष्ट पाते हैं। जो लोग भाग्य के भरोसे रह कर दरिद्रता का दुःख झेलते हुए भी ऋद्धि-प्राप्ति के

भूमिका

जिन सुप्रसिद्ध लेखक बाबू ज्ञानेन्द्रमोहनदास की लेखनी से चरित्र-सुधार की शिक्षा के लिए 'चरित्रगठन' ग्रन्थ निकला है, उन्हीं की पवित्र लेखनी से श्रीवृद्धि की शिक्षा के लिए यह अपूर्व "ऋद्धि" निकली है। ग्रन्थकार ने इस पुस्तक को रच कर लोगों का कितना बड़ा उपकार किया है, यह वर्णनातीत है। हिन्दी में इस बँगला पुस्तक का अनुवाद हो जाने से हिन्दी-साहित्य भण्डार में उस अभाव की पूर्ति हुई है जिसका होना इस समय बड़ा ही आवश्यक था। जो हिन्दी-साहित्य का भण्डार ऋद्धि से खाली था उसे ऋद्धि से भरपूर देख किसे हर्ष न होगा? मैं आशा करता हूँ कि इस ऋद्धि के द्वारा हिन्दी जानने वाले सभी सज्जन कुछ न कुछ अवश्य लाभ उठावेंगे।

संसार से सम्बन्ध रखने वाला प्रायः कोई मनुष्य ऐसा न मिलेगा जिसे ऋद्धि की अपेक्षा न हो। दरिद्र से लेकर कोट्यधीश तक सभी श्रीवृद्धि की इच्छा रखते हैं। किन्तु इच्छा रखते हुए भी ऋद्धि-साधन का उपाय न जानने के कारण कितने ही लोग सफल-मनोरथ न होकर भाग्य को दोष देते हैं और श्रीवृद्धि के प्रयत्न से विमुख होकर कष्ट पाते हैं। जो लोग भाग्य के भरोसे रह कर दरिद्रता का दुःख झेलते हुए भी ऋद्धि-प्राप्ति के

इसमें सन्देह नहीं कि ऋद्धि के पढ़ने वाले अपनी उन्नति कर सकते हैं, अपनी जाति को सम्पत्ति से अलङ्कृत कर सकते हैं और देश की दुर्दशा को भी बहुत कुछ सुधार सकते हैं। 'ऋद्धि' में ऐसे अनेक उपाय लिखे गये हैं जिनका अवलम्बन करके कुली मज़दूर तक भी धनवान् हो सकते हैं। फिर जिनके पास पूँजी है वे ऋद्धि की बदौलत समृद्धिमान् होंगे इसमें आश्चर्य ही क्या है।

इस पुस्तक में उदाहरण के लिए उन अनेक उद्योगशील, निष्ठावान् कर्मवीरों की संक्षिप्त जीवनी दी गई है जो लोग स्वावलम्बन-पूर्वक व्यवसाय करके अपनी दरिद्रता दूर कर करोड़पती हो गये हैं। इस पुस्तक में ऐसी बहुत सी बातें लिखी गई हैं, जिनके पढ़ने से लोग एक पैसे की शक्ति, उद्योग, पुरुषार्थता मितव्यय और संचय आदि अनेक सद्गुणों का ज्ञान प्राप्त करके अपनी उन्नति की बहुत कुछ चेष्टा कर सकते हैं। उसी तरह अपचय, अपरिमितव्यय, अदृष्ट, कृपणता, आत्मप्रतारणा, आलस्य, बहुदान और अनिष्ठा आदि अनेक दोषों के बुरे परिणाम से अपने को बचा सकते हैं।

हिन्दी के रसिक और ऋद्धि के अभिलाषी लोग यदि इसे पढ़ कर कुछ भी लाभ उठायेंगे तो मैं अनुवाद-जनित श्रम को पूर्ण रूप से सफल समझूँगा।

जनार्दन झा

ऋद्धि

पहला अध्याय

ऋद्धि
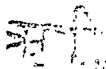
ऋद्धि किसे कहते हैं, इसकी व्याख्या थोड़े में नहीं हो सकती। केवल द्रव्य-सञ्चय करके ही कोई ऋद्धिशाली नहीं बन सकता। धनहीन व्यक्ति भी ऋद्धिमान् नहीं कहला सकते। जो कृपण पैसा बचाने की बुद्धि से पुष्टिकर भोजन, स्वास्थ्यकारी समयोचित वस्त्र और आरोग्यजनक घर के सुख से वञ्चित हैं उन्हें भी ऋद्धिमान् नहीं कह सकते। जो कुछ रात रहते ही बिछौने से उठकर आधी रात तक केवल द्रव्य के पीछे पड़े रहते हैं, जाड़े का कपड़ा ख़रीदने का सामर्थ्य रखते हुए भी द्रव्य के

मोह से जाड़े का कष्ट सहते हैं, छाता न ख़रीद कर कड़ी धूप,
और वर्षा का क्लेश अपने माथे चढ़ाते हैं और दीन दुखियों की।
तरह बड़े कष्ट से जीवन व्यतीत करके कुछ द्रव्य सञ्चय कर
संसार से चल देते हैं। वस्तुतः उनके इस उपार्जित धन को भी
ऋद्धि नहीं कह सकते और न इस धन से उन्हें ऋद्धिमान् कह
सकते हैं। बल्कि वे निर्धन की श्रेणी में गिने जाने योग्य हैं। कृपण
और अपव्ययी इन दोनों में कोई ऋद्धिशाली नहीं। ऋद्धि इ
दोनों के साथ सम्बन्ध नहीं रखती। उसकी स्थिति इन दोनों
बीच के मार्ग में है।

वह ऋद्धि क्या है? इसकी विवेचना करनी चाहिए। ऋ
वृद्धि, श्री और लक्ष्मी सब एक ही अर्थ के बोधक हैं। यदि
कहे—"आज कल उनकी अच्छी वृद्धि हो रही है।" "उ
श्रीवृद्धि दिनों दिन हो रही है।" "वे इन दिनों अच्छे लक्ष्मीवान्
पुरुष हैं।" इन वाक्यों से तुम क्या समझोगे? उनकी लम्बाई
चौड़ाई बढ़ रही है? अथवा वे बड़े सुन्दर और सुशील हैं?
नहीं, यह बात नहीं है। अंगरेज़ी में जिसे थ्रिफ्ट (Thrift) कहते
हैं, उसी को हम लोग ऋद्धि कहते हैं। किन्तु असल में "थ्रिफ्ट'
ऋद्धि का एक प्रधान अङ्ग मात्र है। व्यवहार में इसी ऋद्धि को
श्रीवृद्धि, समवृद्धि या समुन्नति कहा करते हैं। परिमित
करके सञ्चित धन के द्वारा जो आर्थिक उन्नति होती
युक्त भोजन, उचित आचार-विहार, उत्साह, परिश्रम, कार

तत्परता, शिक्षा, ज्ञान, शिष्टता, सच्चरित्रता और धर्माचरण से जो दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति होती है, संक्षेपतः इन्हीं उन्नतियों का नाम ऋद्धि है। यदि कहा जाय कि—"अमुक गाँव की श्रीवृद्धि नहीं।" तो इससे यह समझना चाहिए कि उस गाँव के रहनेवाले अपव्ययी, अपरिश्रमी, द्रव्यहीन, आलसी, दरिद्र और हीन दशा में प्राप्त हैं। ऐसे अवनतिशील ग्रामवासी आलस्य और अज्ञानता के कारण प्रायः गाँव के स्वास्थ्य और सफ़ाई पर ध्यान नहीं देते। वे लोग ज्वर, विसूचिका आदि अनेक रोगों से जर्जरित होकर बड़े दुःख से समय बिताते हैं और अपने माता, पिता, सन्तान और पड़ोसियों की सहायता करने में असमर्थ होते हैं। कितने ही तो रोगाक्रान्त होकर अल्प अवस्था में ही संसार से चल बसते हैं। वे लोग दैहिक और मानसिक शक्ति से रहित होने के कारण अनेक यातना सह कर भी अपने दुःख का कारण नहीं सोचते और न उसके प्रतीकार का कोई प्रयत्न ही करते हैं। वे लोग जैसे अपने साहस के द्वारा वर्तमान अवस्था से उद्धार पाने का कोई उपाय नहीं करते वैसे ही भविष्य के लिए, वक़ बे-वक़ के लिए, कुछ संचय भी नहीं करते। इसका कारण उनकी अज्ञानता और दरिद्रता है। ये लोग द्रव्य प्राप्त करते भी हैं तो उसे अपव्यय के कारण बचा नहीं सकते। वे बहुधा विलासप्रिय होते हैं और पेटपूजा को ही सर्वोपरि मानते हैं। इसी से जो कुछ धन पैदा करते हैं उसे

ख़र्च कर डालते हैं। कभी कभी तो निरर्थक ही वस्तुएँ ख़रीद कर अथवा अकारण बन्धुवर्ग को भोज देकर और उत्सव करके आमद की अपेक्षा अधिक ख़र्च कर बैठते हैं। कितने ही लोगों को ऐसा करते देखा है कि एक दिन वे ख़ूब ख़र्च करके अच्छे अच्छे पकवानों से अपनी रसना को तृप्त करते हैं, किन्तु दूसरे दिन उन्हें आधे पेट खाने के लिए सूखी रोटी भी बड़े कष्ट से मिलती है। एक दिन की फ़िज़ूलख़र्ची से सारा महीना ही कष्ट से कटता है। ऐसे लोग कभी लक्ष्मी प्राप्त नहीं कर सकते, और ऋण के लिए इन लोगों को बहुधा दूसरों का मुँह ताकना पड़ता है। इसलिए द्रव्य जमा करने का अभ्यास सबको करना चाहिए। इस अभ्यास से ऋद्धि सहज-साध्य हो सकती है। किन्तु उन लोगों को ऋद्धि प्राप्त नहीं हो सकती जो बराबर बीमार रहा करते अथवा जिनका चरित्र ठीक नहीं। ऋद्धि प्राप्ति के लिए सच्चरित्र होना नितान्त आवश्यक है। कर्तव्य, ज्ञान, शिक्षा और धर्म ऋद्धि के चिर सहचर हैं। असभ्य समाज की कभी श्रीवृद्धि नहीं होती। अंधेरे में अग्रसर होने के लिए किसी को रास्ता दिखाई नहीं देता। किन्तु ज्ञान, धर्म और सभ्यता के ...२ से उन्नति के मार्ग में किंवा ऋद्धि-पथ में लोग सहज ही ...र हो सकते हैं। इन सब बातों से यही सिद्ध होता है कि ...साथ सब प्रकार की उन्नतियों का ही नाम ऋद्धि है। दैहिक, ... और आध्यात्मिक उन्नति ज्ञान, विज्ञान और सभ्यता

की वृद्धि, सामाजिक और जातीय जीवन का परिष्कार ये सभी इन्हीं के अन्तर्गत हैं। मान लो इन्हें एक वृक्ष है, जिसका मूल सुचरित्र है, आत्म निर्भरता तना है, श्रम, धैर्य, संचयशीलता आदि शुभ शाखा, प्रशाखा हैं, धनप्राचुर्य, क्षमता और उदारता आदि पत्र हैं, सुयश, सम्मान फूल हैं और शान्ति सुख फल हैं। जिस अमृतरस के पान से यह वृक्ष हरा भरा रहता है, वह अमृतरस तीन धाराओं में प्रवाहित हो रहा है। जिनका नाम क्रमशः—आशा, विश्वास और उग्र अभिलाष है।

कोई काम शुरू करदो

उचित कामों को जहाँ तक हो शीघ्र कर डालना ही अच्छा है। किसीने कहा भी है "शुभस्याचरणं शीघ्रम्" अर्थात् शुभकर्म में विलम्ब न करना चाहिए। बहुत लोग यह कह कर कि "कल करेंगे" दो दिन के बाद करेंगे।" "अगले महीने में करेंगे" आवश्यक कामों को भविष्य पर टाल देते हैं। ऐसे भविष्याभिलाषी लोगों से प्रायः वे काम फिर सम्पन्न नहीं होते। कितने ही लोग यों कहा करते हैं कि यह काम तो ज़रूर करना होगा किन्तु कोई शुभ कार्य शुभ मुहूर्त देख कर ही करना ठीक है। इसके लिए कोई अच्छा दिन निश्चित होना चाहिए।" इसी प्रकार दिन का निश्चय करते ही करते समय बीत जाता है, पर कार्य का आरम्भ नहीं होता। कितने ही लोगों को यह विश्वास है कि "जो काम

आदि में बिगड़ना है वह फिर नहीं सुधरता।" इसी विश्वास के वशवर्ती होकर वे सहसा किसी काम में हाथ नहीं डालते। वे सोचते हैं "आरम्भ ही में यदि विफलता हुई तो भविष्य में कृतकार्य होने की कोई आशा नहीं।" अतएव वे कार्य के आरम्भिक गठन की प्रतीक्षा में ही सारा जीवन बिता देने पर विपद की आशङ्का से कार्य करने में प्रवृत्त नहीं होते। ऐसे ही कोई कोई यह कहा करते हैं कि "काम करेंगे तो अच्छी तरह से करेंगे नहीं तो नहीं करेंगे।" पर वे यह नहीं सोचते कि कोई काम शुरू शुरू में सर्वांशतः अच्छा नहीं होता। कोई व्यक्ति काम शुरू करने ही के साथ कृतकार्य नहीं होता। काम करने से ज्यों ज्यों तजरिबा हासिल होता है त्यों त्यों सफलता प्राप्त होने की आशा बढ़ती जाती है और एक न एक दिन उसका आयास सफल हो ही जाता है। किसी कवि ने कहा भी "भवति विगततमः क्रमशो जनः।" जो लोग काम बिगड़ने के भय से कार्य-क्षेत्र में पदार्पण नहीं करते उन्हें एकबार सोचना चाहिए कि संसार के जितने काम हैं सभी उत्थानशील हैं और जो उत्थानशील हैं उनका पतन भी अवश्यम्भावी है। जो खड़ा होता है उसीको गिरने का भय रहता है। लड़कों का बार बार का गिरना उन्हें दौड़ने में समर्थ बनाता है। गिरने के डर से लड़के यदि न चलें तो अपने पांव खड़े होने का भी सामर्थ्य उन्हें प्राप्त न होगा, दौड़ना तो उनके लिए दूर की बात है। अधिकांश जगहों

विफलता ही शिक्षा की सीढ़ी और कृतकार्यता का कारण होती है। मिस्टर ग्लाडस्टोन ने पार्लियामेन्ट महासभा में पहले पहल ऐसी वक्तृता दी थी कि कोई उसे न समझ सका और न किसी को वह पसन्द आई। दूसरी बार फिर उन्हें वक्तृता देने का मौक़ा मिला। सभी लोग उनकी सफलता के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट कर रहे थे। किन्तु अब की बार उनकी वक्तृता से सभी प्रसन्न हुए। कुछ दिनों में वे वक्ताओं में सर्वश्रेष्ठ गिने जाने लगे और विश्वविख्यात होकर सर्वत्र सम्मानित हुए। कार्लाइल के समान महाविद्वान् की भी प्रथम रचना चित्ताकर्षक न होने के कारण विशेष रूप से आदृत न हुई थी।

जब तुम देखो कि यह काम करना होगा और इस काम का उद्देश्य शुभ है, तब उसका आरम्भ कर ही दो, विलम्ब न करो। जब कुछ काम तुम कर चुकोगे तब तुम्हारा उत्साह आपही बढ़ेगा। एक लड़का प्रति दिन प्रातःकाल मिठाई के लिए अपने दादा से एक पैसा पाता था। एक दिन उसे दो पैसे की मिठाई खाने की इच्छा हुई। परन्तु एक पैसे से अधिक तो वह किसी दिन पाता ही नहीं था जो अपनी तृष्णा का निवारण करता। तृष्णा बहुत बढ़ी थी, इससे वह रोज़ प्रतिज्ञा करता था कि कल जलपान न कर पैसा रख छोड़ूँगा और परसों दो पैसे की मिठाई एक ही मरतबा खाऊँगा" किन्तु मिठाई का अभ्यास उसे इतना प्रबल था कि प्रतिज्ञा

उसका अङ्ग गठित और दृढ़ होता है। प्रौढ़ अवस्था में आकर वही मनोवाञ्छित फल देता है। आरम्भ न होने से कोई काम पूर्ण नहीं हो सकता। किसी कार्य्य की पूर्णता के लिए प्रथम आरम्भ ही आवश्यक है। कितने ही अच्छे काम आरम्भ न होने के कारण नष्ट हो गये हैं और हो रहे हैं। किसी अच्छे काम के आरंभ करने में पहले ही लोग इतना विलम्ब कर देते हैं कि आखिर वह असम्भव कह कर छोड़ दिया जाता है। तुम कोई काम आरम्भ करदो, देखोगे काम का आधा भार हलका हो पड़ा है। किसी कार्य्य के आरम्भ काल में विशेष समारोह न होना नैराश्य का कारण नहीं वल्कि प्रारम्भ काल में बहुत आडम्बर न करना ही अच्छा है। किसी ने कहा भी है "बह्वारम्भे लघुक्रिया०।" अर्थात् अधिक आडम्बर के साथ जो काम आरम्भ होता है उसका फल अत्यन्त सामान्य होता है। ज़ीना कितना ही ऊँचा क्यों न हो किन्तु उसकी पहली सीढ़ी सबके नीचे यहाँ तक कि धरती से मिली रहती है, यह किसी को भूलना न चाहिए, एकही एक पग आगे बढ़ कर लोग पहाड़ के ऊँचे शिखर पर पहुँच जाते हैं। जो बरगद का पेड़ शाखा, प्रशाखाओं से चारों तरफ़ फैल कर हज़ारों थके बटोहियों को अपनी छाया प्रदान से ठण्डा करता है, सोचो तो उसकी उत्पत्ति कितने छोटे से छोटे बीज से होती है। विशालवृक्ष का अङ्कुर देख कर क्या अपनी उन्नति के साधन से कोई निराश हो सकता है?

कितने ही लोग कहते हैं कि "खाना, कपड़ा तो चलता ही नहीं, हम बचावेंगे क्या ख़ाक ! यदि किसी तरह कुछ बचावेंहींगे तो उससे क्या होगा ? महीने में यदि दो एक रुपया बचही गया तो क्या उसे बचना कहेंगे ? इतना थोड़ा द्रव्य बचा कर जो कष्ट और असुविधा भोगनी पड़ेगी, इससे तो अच्छा यही है कि द्रव्य न बचा कर कष्ट ही को दूर करें।" नहीं, उनका यह कथन ठीक नहीं। महीने में जो ही कुछ बच सके उसे ज़रूर बचाना चाहिए। इसमें हानि क्या ? जो प्रतिदिन एक आना बचाता है उसका महीने में दो रुपया जमा हो जाता है। एक बरस में वह चौबीस रुपया जमा कर सकता है। साल में चौबीस रुपया बचना बहुत हुआ। एक पैसा रोज़ जमा करने से सोलह वर्ष में एक सौ रुपया जमा हो जाता है। एक पैसा की महिमा कुछ कम नहीं है। यही एक सौ पूँजी लेकर कितने महाजन लक्षपति हो गये हैं। एक रुपया हो चाहे एक पैसा हो, कुछ मासिक बचाने का आरम्भ कर ही देना चाहिए और नियम भङ्ग न हो, इस पर भी ध्यान रखना चाहिए। कष्ट स्वीकार करके, चाहे कुछ कठिनाई झेल कर, संचय का सूत्रपात कर देना ही उचित है। इसलिए किसी को कठिन साहस, असाधारण प्रतिभा या सामर्थ्य की आवश्यकता नहीं है। केवल एक स्वाभाविक बुद्धि रहनी चाहिए और आमोद, प्रमोद, भोग, विलास वासनाओं के वशीभूत न होकर उचित और आवश्यक

कर्तव्य मात्र का पालन करना चाहिए और छोटे छोटे स्वार्थ-सुख की स्पृहा को चित्त से दूर कर देना चाहिए। इसमें पहले पहल कुछ कष्ट अवश्य बोध होता है, किन्तु भविष्य की स्थिति और सुखसाधन के लिए यदि कुछ काल तक थोड़ा कष्ट ही सहना पड़े तो उसे आनन्द ही माने। थोड़ा कष्ट सह कर विशेष सुख पाने की इच्छा किसे न होगी? पहले अपने ऊपर बिना कुछ कष्ट उठाये किसी को सुख-सम्पत्ति नहीं मिलती। बिना कुछ तकलीफ़ बरदाश्त किये कोई मितव्ययी नहीं हो सकता। कष्ट-सहिष्णु हुए बिना कोई परिश्रमी भी नहीं हो सकता। बिना परिश्रम से धन भी प्राप्त नहीं होता। अतएव कष्ट-सहिष्णुता, श्रमशीलता और मितव्ययिता, धनोपार्जन और संचय का मूल है। संचित धन विपत्ति काल में काम आता है, निरुपाय अवस्था में जीवन का अवलम्ब होता है और आर्तकाल में सान्त्वना देता है। ऐसे अमृतोपम धन संचय करने का आजही से उद्योग करो, इसी घड़ी से पैसा बचाने का आरम्भ करदो। जो दिन बीत गये, उनका सोच न करो। "बीती ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेहु!" अब भी सावधान होकर अपने कर्तव्य का पालन करोगे तो बहुत कुछ लाभ उठा सकोगे। द्रव्य संचय करना, कोई विशेष शक्ति नहीं, कोई विशेष गुण नहीं, यह मनुष्यमात्र का एक कर्तव्य धर्म है। जो इस कर्तव्य का पालन नहीं करते उन्हें इस पाप का प्रायश्चित्त दारिद्र्यरूपी चान्द्रायण व्रत के द्वारा ज़रूर

करना पड़ता है। इसलिए यथासाध्य कुछ संचय करते रहो, जिसमें किसी दिन प्रायश्चित्त करने का अवसर प्राप्त न हो।

सामान्य विषयों का महत्त्व

न तुम लोगों ने "चरित्रगठन" पुस्तक में पढ़ा होगा कि सामान्य से भी सामान्य विषय उपेक्षा करने योग्य नहीं है। सामान्य सामान्य विषय ही मनुष्यों के चरित्रगठन का उपकरण है। साधारणतया देखने से एक ईंट तुच्छ जान पड़ती है। किन्तु विचारपूर्वक देखने से मालूम होगा कि उसका मूल्य कितना है। इसी एक एक सामान्य ईंट से बड़ी बड़ी ऊँची अटारियाँ और राजा के महल तैयार होते हैं। सामान्य सामान्य दोषों का आश्रय करके संसार की कितनी ही जातियाँ नष्ट हो गई हैं और सामान्य सामान्य गुण को एकत्र कर कितनी ही जातियाँ उन्नति के शिखर तक पहुँच गई हैं। संसार का यही स्वाभाविक नियम है। यह सारा ब्रह्माण्ड जो इतना बड़ा दिखाई दे रहा है, परमाणुओं की समष्टिमात्र है। वह परमाणु इतना छोटा है, जिसे हम आँखों से देख तक नहीं सकते। जातीय इतिहास ...र लोगों की जीवनी के अतिरिक्त और क्या है? जो सब ...भाव चरित्र-बल से संसार में अपना नाम चिरस्थायी ...गये हैं और अनेक लोकोपकारी काम कर के अपनी अद्भुत

शक्ति का परिचय दे गये हैं, क्या उन लोगों ने एकही दिन में किसी अलौकिक काम से लोगों को चकित कर दिया था? नहीं, वे लोग अपने जीवन में कभी दया का एक सामान्य काम करके, कभी न्याय का सामान्य काम, कभी एक साधारण सत्य का पालन और कभी एक साधारण स्वार्थ का त्याग करके ही विख्यात हुए थे। जिसे तुम एक दम तुच्छ समझते हो और उस सामान्य कर्तव्य के पालन से पराङ्‌मुख होते हो, ऐसे ऐसे कितने ही सामान्य कर्तव्यों का वे धर्म समझ कर प्राणपण से पालन करते थे। इसी से उनका इतना यश फैल गया।

जो काम प्रति दिन करना पड़ता है, वह एक प्रकार लोगों को अभ्यस्त हो जाता है। जो काम पहले कठिन और कष्टकर बोध होता है, वही कुछ दिन के बाद अभ्यस्त हो जाने पर सहल और स्वाभाविक हो जाता है। तुम इस बात की सत्यता की परीक्षा करके सहज ही जान सकते हो। तुम अपने पाठ्य पुस्तक के किसी विषय को एक दिन तीस मरतबा पढ़ जाओ, शायद वह विषय तुम्हें कण्ठस्थ न होगा। जिस विषय को तुम एक दिन में तीस बार पढ़ के भी कण्ठस्थ नहीं कर सके। वह प्रति दिन केवल एक बार पढ़ने ही से तीस दिन में तुम्हें बखूबी कण्ठस्थ हो जायगा। अभ्यास की ऐसी अद्भुत शक्ति है। इस शक्ति को सामान्य अच्छे अच्छे कामों में लगाने से तुम भी संसार को चकित कर सकते हो। मान लो, आज सवेरे

उठकर तुमने प्रतिज्ञा की—"अनेक कारणों से और बिना कारण भी हम रोज़ ही न मालूम कितना झूठ बोलते हैं, आज एक बात भी मुँह से मिथ्या न निकलने देंगे।" प्रतिज्ञा तो तुमने बड़ी आसानी से करली, किन्तु जितना ही समय बीतने लगा, उतनाही तुम्हारा प्रतिज्ञापालन करना कठिन होने लगा। तुम अब वीरता धारण कर अपने स्वभाव के साथ, अपनी चित्तवृत्ति के साथ जूझने लगे। तुम्हारा पहले का अभ्यास ज्योंही तुमसे झूठ बुलवाना चाहता है त्योंही तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा की बात याद आ जाती है। और तब तुम बड़ी सावधानी से प्रतिज्ञा की रक्षा करने लगते हो। कुछ देर के बाद तुम कोई लेख लिखने बैठे, किसी घटना का उल्लेख करते करते अभ्यासवश तुम सोचने लगे कि इस जगह कुछ मिथ्या वर्णन कर देने से पाठकों का विशेष मनोरञ्जन होगा" एकाएक तुम्हारी लेखनी रुक गई, तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा याद हो आई। तुमने मनही मन कहा—"लोगों का मनोरञ्जन हो या न हो, आज झूठ हर्गिज़ न बोलूँगा।" इस प्रकार तुमने प्रतिवार अपने चिरन्तन अभ्यास को दबा कर वीर की तरह अपने सत्य का पालन किया। इसके बाद स्वस्थ मन से यदि तुम अपनी परीक्षा करके देखोगे तो जानोगे कि अनेक चेष्टा करके भी तुम अपनी प्रतिज्ञा को पूर्णरूप से नहीं पाल सके। किस वक्त तुमसे क्या भूल हुई, यह किञ्चित् ध्यानस्थ होने से तुम्हें आपही मालूम हो जायगी। तथापि इस

बात को कोई नहीं काट सकता कि और दिन जहाँ तुम दस
त झूठ बोलते थे, वहाँ आज तुम दो या तीन बोले हो। इस
दूसरे दिन यदि तुम सच बोलने की चेष्टा करोगे तो तीन
थ्या की जगह दो और उसके पर दिन में कदाचित् एक झूठ
ोलेगो। उस के बाद फिर तुम्हारे मुँह से एक भी झूठ बात न
कलेगी। इस प्रकार जब तुम पूर्ण रूप से मिथ्या भाषण पर
जय प्राप्त करके सत्यभाषी बनोगे तब तुम्हें वह आनन्द
लेगा जो लड़ाई के अन्त में विजयी सेनापति को मिलता है।
ानन्द के साथही तुम्हारी मानसिक शक्ति भी दिन दिन बढ़ती
ायगी। प्रति दिन यदि योंही तुम सच बोलने का अभ्यास
रोगे तो थोड़ेही दिनों में सच बोलना तुम्हारा स्वाभाविक हो
ायगा। और प्रति दिन की वह सत्य भाषण की सामान्य शक्ति
ञ्चित हो कर तुम्हें महाशक्तिशाली बना देगा। तब यह
तःसिद्ध है कि तुम्हारी प्रबल शक्ति के सामने हीन शक्ति
ज़रूर सिर झुकावेगी। तुम्हारी सत्यनिष्ठा देखकर वृद्ध लोग भी
तुम पर भक्ति, श्रद्धा और विश्वास करेंगे। जिस काम में तुम
हाथ डालोगे उसी में सफलता प्राप्त करोगे। सत्य की महिमा
ऐसी ही है। जो काम हज़ार झूठ बोलने से सिद्ध नहीं होता
वह सत्य भाषण के बल से अनायास सिद्ध होता है।

किसी को छोटा समझ कर कभी उसकी अवहेला न करो।
विष का एक छोटा सा कण रुधिर के साथ मिल जाने से सारे

शरीर को व्यथित करके मृत्यु का कारण होता है। छोटी सी मधु मक्खियाँ डंक मार कर बड़े बलवान् हाथी को भी पीड़ित ... पराभूत कर देती हैं। छोटी सी वस्तुओं में जो सामर्थ्य है से क्या तुम नहीं जानते? यह जो बड़ी विशाल रेलगाड़ी हज़ारे मन बोझ और हज़ारों मनुष्यों को एक साथ लेकर ऊपर ... और साँस फेंकती हुई वायु की गति से दौड़ रही है वह, ... इंजन में रहनेवाली एक क्षुद्रकणमय बाष्प-शक्ति का का... नहीं है? समय का एक एक पल कैसा अमूल्य है, इस पर प्रा... तुम लोग उतना ध्यान नहीं देते। इसीसे व्यर्थ कामों में स... नष्ट करना बुरा नहीं समझते। मान लो कि कोई विद्यार्थी स्... में पढ़ रहा है, एकाएक तार के द्वारा घर से ख़बर आई कि ... की मा मरणापन्न है, उसे अति शीघ्र घर जाना चाहिए। रे... गाड़ी के द्वारा जाने से उसका घर वहाँ से कई घण्टों का था। वह छुट्टी लेकर तुरंत घर पर आया और "टाइमटेबु... लेकर देखा, गाड़ी छुटने में सिर्फ़ दस मिनट देरी थी। वह स्टेशन की ओर दौड़ा। उसके घर से स्टेशन भी प्रायः दस मि... का रास्ता था। स्टेशन पर जाकर टिकट भी लेना होगा, इतं... कहीं गाड़ी छुट गई तो उस दिन फिर दूसरी गाड़ी न मिलेगी। इधर तो उसके मन में यह चिन्ता हो रही है, उधर सन्तानवत्सला माता मृत्युशय्या पर पड़ी हुई अपने पुत्र का एक बार मुख देखने के लिए व्याकुल हो रही है, मानो उसी की आशा में अब भी

उसके प्राण रुके हुए हैं। कल्पना की दृष्टि से यह लड़का यह हृदय-विदारक दृश्य देख रहा है। अपनी माता का स्नेह और वात्सल्य स्मरण कर बड़े व्याकुल चित्त से उन्मत्त की तरह स्टेशन की तरफ़ बेतहाशा दौड़ा आ रहा है। किसी न किसी तरह स्टेशन पर पहुँचा, झटपट टिकट लेने लगा, इतने ही में घंटी बजने के साथ ही साथ गाड़ी ने सीटी बजाई। अब देर नहीं है सिर्फ़ एक पल की देर है। उस के बाद गाड़ी अदृश्य होजायगी! विचारो तो यह एक पल, यह समय का इतना क्षुद्रतम अंश, इस समय कितना मूल्यवान् हो रहा है।

सामान्य कह कर अपेक्षा करने योग्य कुछ नहीं है। ईश्वर की सृष्टि में कोई चीज़ सामान्य नहीं है। तुम्हारी दृष्टि में कोई वस्तु भले ही सामान्य जँचे, पर वास्तव में वह सामान्य नहीं है। सामान्य केवल एक मौखिक बात है। "अहा" इतना कहने ही से एक शोकाकुल व्यक्ति को बहुत कुछ सान्त्वना मिल सकती है और एक छोटी सी कठोर बात से उसकी छाती फट जा सकती है। तुम्हारे होठों में मुसकुराहट की झलक देख कर तुम्हारी छोटी बहन को आनन्द की सीमा नहीं रहती, किन्तु ज़रा सी भौं टेढ़ी करते ही उसे चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा सूझने लगता है और वह व्याकुल होकर रो उठती है। अब तुम ख़ुद समझ जाओगे कि उस सामान्य मुसकुराहट में कितनी शक्ति भरी है। इसी प्रकार समझ लो कि संसार में जितने अच्छे बुरे, सुख दुःख,

और शुभ अशुभ दृष्टिगोचर होते हैं वे सब सामान्य साम
विषयों के ही ऊपर अवलम्बित हैं।

यह जो सुना जाता है कि अमुक व्यक्ति का प्रबन्ध बहु
अच्छा है। वे बड़ी उत्तमता से अपने घर का ख़र्च चला रहे हैं
अमुक व्यक्ति खूब पक्का गृहस्थ है। वह स्त्री घर का काम बहु
सुघराई से चला रही है। इन सब बातों से क्या मतलब निक
लता है? हम सब बातों से यही समझते हैं कि उन लोगों के
घर में रोज़ाना काम नितान्त सामान्य होने पर भी प्रयोजन
अनुसार ठीक समय पर सम्पादित होता है। जिसका जो कर्त
है वह यथाशक्ति उसे निर्विवाद पूरा करता है। जो चीज़ जह
रहनी चाहिए वह वहीं रक्खी जाती है। जिस वक्त के लिए जे
जो काम नियत है वह काम उसी वक्त में किया जाता है। जि
विषय में जो निपुण है वह उसे अपने हाथ में लेता है।
घर का काम इन नियमों से प्रतिपादित होता है, जानना
कि उस घर में आय के अनुसार उचित ख़र्च होकर कुछ भवि
के लिए भी द्रव्य ज़रूर सञ्चित होता है। उस घर में
अथवा तुच्छ कह कर अच्छे कामों की अवहेला नहीं की जा
यहाँ तक कि एक मुट्ठी चावल भी व्यर्थ कहीं नहीं फेंके जा
फटे कपड़े का एक टुकड़ा भी नहीं फेंका जाता।

छोटे छोटे विषयों में मनोयोग न देकर अथवा सामान्य
पर दृक्पात न करके बड़े बड़े सेठ साहूकारों का दिवाला

जाता है। बात की बात में उनकी चिरकालिक प्रतिष्ठा लुप्त हो जाती है। ऐसे ही सामान्य सामान्य विषयों पर विशेष लक्ष्य रख कर और एक एक कौड़ी के हिसाब पर दृष्टि डाल कर अनेक फेरी वाले दरिद्र लाखों की दौलत हासिल कर मालामाल हो गये हैं। स्थान, काल और पात्र के भेद से प्रत्येक वस्तु और विषय की उपयोगिता होती है। सोचने से सभी बातें प्रयोजनीय ान पड़ती हैं। यदि तुम बुद्धिमान् होना चाहो तो सामान्य ाद कर किसी विषय की अवहेला न करो।

समय का सदुपयोग

संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो परिवर्तनशील न हो। धीरे धीरे सभी का परिवर्तन होता है। ये जो बड़े बड़े द्वीप (टापू) समुद्र के बीच से निकल पड़ते हैं क्या तुम लोग समझते हो यह किसी एक दिन के भूकम्प का फल है? नहीं कई करोड़ प्रवाल-कीटों (मूँगा बनाने वाले कीड़ों) के द्वारा हज़ारों वर्ष में जाकर कहीं एक प्रवाल द्वीप की सृष्टि होती है। जहाँ एक दिन अगाध जल था वहाँ सूखी ज़मीन देख कर किसे आश्चर्य न होगा? पर यह आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यह प्रकृति धीरे धीरे परमाणु को पहाड़ बना डालती है। इस विपुल ब्रह्माण्ड में प्रकृति के द्वारा हम लोगों को दिन दिन यही शिक्षा मिलती

है कि जितने बड़े बड़े काम हैं, सबका आधार धैर्य ही है। जो नियम संसार के प्राकृतिक पदार्थों के परिवर्तन से सम्बन्ध रखता है वही नियम हम लोगों के अवस्थापरिवर्तन से भी सम्बन्ध रखता है। हम लोग अपनी आँखों देख रहे हैं कि नित्य नियमपूर्वक थोड़ी थोड़ी चेष्टा करने से कुछ समय में बहुत बड़े बड़े काम सम्पन्न होजाते हैं। अनियमरूप से दो एक बार असाधारण चेष्टा करने पर भी अभिमत फल प्राप्त नहीं होता। उद्यम कैसा ही सामान्य क्यों न हो, किन्तु नियमरूप से बहुत दिनों तक बराबर करते रहने पर उसकी शक्ति लोगों को आश्चर्य उत्पन्न करती है।

पाँच मिनट बहुत ही कम वक्त है देखते ही देखते बीत जाता है किन्तु यह पाँच मिनट समय प्रतिदिन नष्ट करने से एक वर्ष में एक दिन छः घंटे पचीस मिनट नष्ट होते हैं। दस वर्ष में बारह दिन से भी अधिक समय क़रीब आधे महीने के बरबाद होता है। कोई मनुष्य यदि बीस वर्ष की उम्र से काम करना शुरू करे और साठ वर्ष की उम्र तक काम करे और प्रतिदिन पाँच मिनट वृथा गँवावे तो उस व्यक्ति ने चालीस बरस के अन्दर पचास दिन, सोलह घण्टे और चालीस मिनट बरबाद किये अर्थात् तीन वर्ष, चार महीने तक मानो उसने प्रतिदिन एक घण्टा मुफ़्त खोया। इतने अधिक समय में लोग कोई क्लिष्ट भाषा वा कोई प्रयोजनीय [illegible] अथवा कोई अर्थकरी विद्या सीख सकते हैं। किन्तु खेद

का विषय है कि हम लोगों के जीवन में प्रतिदिन ऐसे ऐसे कितने ही पाँच मिनट मुफ़ बरबाद होते हैं। इसका कोई कहाँ तक हिसाब लगा सकता है? प्यारे युवकगण। अब भी सावधान होकर अपने अनूठे समय पर ध्यान दो। कैसे अच्छे अच्छे सुयोग तुम्हारे हाथ से निकले चले जा रहे हैं। यदि तुम अल्प से भी अल्प समय की उपेक्षा न करोगे तो सुयोग स्वयं तुम्हारा हाथ पकड़ेगा।

घड़ी भर भी समय वृथा नष्ट न करके और समय का सदुपयोग करके कितने ही कर्मवीर विद्वान् अनेकानेक वृहद् ग्रन्थ लेख कर अपने नाम को अमर कर गये हैं।

एक पैसे का महत्त्व

भारतवर्ष में लगभग तीस करोड़ के आदमी हैं। ये तीस कोटि मनुष्य यदि सप्ताह में एक पैसा रख छोड़ें तो एक वर्ष में अठारह अरब चालीस करोड़ पैसा या यह कहो कि साढ़े बाईस करोड़ रुपये, जो एक करोड़ पचास लाख गिनी के बराबर हैं, जमा हो सकता है। इन स्वर्णमुद्राओं को एक एक कर पास ही पास विछाने से ये दो सौ मील तक बिछाये जा सकते हैं। यदि कोई रेलगाड़ी पर सवार हो तो इतना बड़ा रास्ता प्रायः साढ़े नौ

घण्टों में तय कर सकेगा। गिनो रुपयों की बात जाने दो, उन १८ अरब ४० करोड़ पैसों को परस्पर संलग्न पंक्तिबद्ध रक्खे तो वे हमारी इस पृथिवी की चारों ओर घूम कर और ठीक इतनी बड़ी और आठ पृथिवी की परिक्रमा करके भी भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक बिछाये जा सकते हैं। पृथ्वी से दो लाख अड़तीस हज़ार माल की दूरी पर चन्द्रमा है और चन्द्रमा की परिधि छः हज़ार तीन सौ माल है। इन पैसों की बिछी हुई पंक्ति यदि ऊपर की ओर उठाई जाय तो वह चन्द्रलोक तक पहुँच कर चन्द्रमण्डल के चारों ओर परिक्रमा कर सकती है। अथवा हिमालय की सबसे बड़ी चोटी जो धरती से पाँच माल आठ छियासठ गज़ ऊँची है, वैसी ऊँची ऊँची २७५८ चोटियाँ एक के ऊपर एक रखने से कदाचित् उन पैसों की उँचाई की तुलना कर सके।

ऐसा कभी न समझो कि राजा महाराजा, या ऐश्वर्यशाली व्यक्ति जो आईन, क़ानून, न्यायालय, विद्यालय और चिकित्सालय आदि स्थापित करते हैं वे जभी चाहते तभी संसार का हितसाधन या उन्नति करने में समर्थ होते हैं और तुम नहीं होते हो। जो काम शीघ्रता में एकाएक होता है, उसकी चिरस्थायिता में सन्देह है। जो क़ानून एकाएक बन जाता है, थोड़े ही दिनों में उसका बहुत कुछ परिवर्तन होता है। यहाँ तक कि वह जारी होने के साथ ही बन्द कर दिया जाता है। किन्तु जो बहुत सोच विचार क

धीरे धीरे अनेक दिनों में बनता है, यह देशाचार और समाज के अनुकूल होने से देशमान्य होकर चिरकाल तक स्थिर रहता है। हम लोग यदि अपने जीवन के उन्नत करना चाहें और अपनी अवस्था को सुधारना चाहें तो हम लोगों को बड़ी सावधानी से धीरे धीरे उसका प्रयत्न करना होगा। उसके लिए किसी विशेष शक्तिशाली व्यक्ति का प्रयोजन न होगा। राजा, महाराजा या शास्त्रकार कभी मनुष्य को साधु, साहसी और प्रेमिक नहीं बना सकते। यहाँ तक कि उन्हें किसी को सुखी करने का भी सामर्थ्य नहीं है। अपनी इच्छा करने ही से कोई शिष्ट, साहसी और सुखी हो सकता है। जब तक उन्नति का अभिलाष मन में अंकुरित न होगा तब तक उन्नति के उपयुक्त कामों में प्रवृत्ति ही न होगी। बिना प्रवृत्ति के कोई उद्योगशील नहीं होता। बिना उद्योग के सफलता ही क्यों कर प्राप्त हो सकती है? अतएव अपने ही उद्योग-बल से लोग अपनी उन्नति कर सकते हैं, लक्ष्मी प्राप्त कर सकते हैं और देश का भी बहुत कुछ उपकार करके सुख-शान्ति का स्थापन कर सकते हैं। सभी लोग यदि अपनी उन्नति के लिए सामान्य चेष्टा करके यथासाध्य कर्तव्य की रक्षा करें, सभी लोग यदि सुचरित्र, उद्यमशील, परिश्रमी, आत्मनिर्भर और मितव्ययी होकर ऋद्धिशाली बनें तो समग्र जाति और देश को उन्नत होते क्या देर लगे?

पुरुषार्थ और अदृष्ट

"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोत्र दोषः ॥"

अहो पथिक क्यों रुकि रहे लखि सुख पन्थ अछाम ।
विन उद्यम कहु कौन के सफल होत मन काम ॥

उन्नति और ऋद्धि का मूल कारण पुरुषार्थ ही है। विना उद्योग किये कोई लक्ष्मी प्राप्त नहीं कर सकता। संसार की उन्नत जातियों में जो आज कल सबसे प्रधान हैं, और ज्ञान धन, सामर्थ्य, कार्य्यकुशलता में जो सबसे बढ़े चढ़े हैं, उनका जातीय इतिहास पुरुषार्थ का अच्छा नमूना है।

युरोप किसी समय अज्ञानरूपी अन्धकार में डूबा था। कुसंस्कार ने मनुष्योचित गुणावली से वहाँ के निवासियों को वञ्चित कर रक्खा था। किन्तु जब उन लोगों की मण्डली में ज्ञान का प्रवेश हुआ तब उन लोगों के हृदय से अज्ञानरूपी अन्धकार दूर हो गया, उनकी आँखें खुल गईं। तब बड़ी तत्परता से कोई ज्योतिष, कोई दर्शन, कोई शिल्प, कोई साहित्य, कोई धर्म और कोई समाज को अपनी अपनी शक्ति के अनुसार परिष्कृत करने लगा। कुछ ही दिन के बाद देखा गया, जहाँ मूर्खता राज्य कर रही थी, वहाँ विद्या की विजय-पताका फहराने लगी। उ[illegible] अच्छी सड़कें, अच्छे अच्छे मकान बं

भाग की शोभा दिखाई देने लगी। जहाँ अराजकता फैली थी, वहाँ सुविचार और शासन-प्रणाली की प्रतिष्ठा हुई। जो कूप-मण्डूकवत् अपना देश छोड़ कर कहीं न जाते थे, वे वनज-व्यापार करने के लिए देशदेशान्तर जाने लगे। जो साधारण भोजन-वस्त्र के लिए तरसते थे, उनकी जन्मभूमि संसार की विविध विलास-वस्तुओं से और अन्न-धन से परिपूर्ण होकर लक्ष्मी का आवासस्थान बन गई। किसी समय पाश्चात्य देशवासी ने प्राच्य निवासियों का ऐश्वर्य देख कर आश्चर्य के साथ पूछा था कि—"ये लोग क्योंकर ऐसे धनाढ्य हुए?" इस प्रश्न का उत्तर देववाणी की तरह उनके हृदय में आपही आप उद्भूत हुआ। "उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः०"।

इस पुण्यभूमि के अधिवासिगण जिस मन्त्र-बल से ज्ञान-समुद्र को मथ कर महालक्ष्मी और अमृत (मोक्ष) के अधिकारी हुए थे, वह मन्त्र-बल आज कहाँ गया? क्या हुआ? निश्चय तुम लोग उस सञ्जीवनी मन्त्र को भूल कर महालक्ष्मी की कृपा से वञ्चित हुए हो। उस मन्त्र का याद आना तो अब सम्भव नहीं, इस समय "उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः०"। इस महामन्त्र का साधन करो और फिर लक्ष्मी के कृपापात्र बनो।

जैसे आलस्य का उलटा उद्योग है वैसेही अदृष्ट का उलटा पुरुषार्थ है। जो लोग आलसी हैं, वे अदृष्ट के भरोसे रह कर दुःख पाते हैं। जो उद्योगशील हैं वे पुरुषार्थ करके सुख पाते हैं।

आजकल भारतवर्ष में अदृष्टवादियों की संख्या बहुत बढ़ी है। अदृष्टवाद की जड़ इतनी मज़बूत हो गई है कि पुरुषार्थवादी उद्यमशील जाति के साथ कई सौ वर्षों से सम्पर्क होने पर भी अब तक ज़रा भी न हिली। बल्कि और दिन दिन मज़बूत ही होती है। निरुद्यमी लोगों की संख्या दिन दिन बढ़ती जाती है। जिस समय भारत में अदृष्टवाद का प्रचार हुआ था, उस समय भारत की अवस्था और ही थी। तब लोगों को भोजन वस्त्र आदि अत्यावश्यक प्रयोजनीय वस्तुओं के लिए कोई चिन्ता न थी। उन दिनों वस्तु से ही लोग वस्तु ख़रीदते थे। इस प्रकार सब लोग अपने अभाव की पूर्ति कर लेते थे। देशान्तरीय पदार्थों के बिना किसी को कुछ कष्ट-बोध न होता था। रुपये पैसे व्यवहार में बहुत कम आते थे। रुपया इतना महँगा था कि कौड़ी को लोग रुपया करके समझते थे और जब तब कौड़ियों से ही अकसर रुपये पैसे का काम चला लेते थे। उस समय लोग अर्थ को अनर्थ का मूल समझ कर धन का उतना संग्रह नहीं करते थे। उस समय जो समाज में अत्यन्त हीन था उसे भी रहने के लिए घर और खाने के लिए अन्न का अभाव न था। उस समय भारत में अन्न इस बहुतायत से उपजता था कि लोग थोड़े परिश्रम से भी परिवार-पोषण-योग्य अन्न पैदा कर लेते थे। गाँव के लोग अपने से अधिक सम्पन्नों के साथ प्रतियोगिता करना नहीं जानते थे। जो

स अवस्था में था वह उसी में सुखी था। प्रतियोगिता करने
। चाम केवल वाणिज्यप्रधान शहरों ही में घिरी थी। इन्हीं
व कारणों से भारतवासी के हृदय में अदृष्टवाद ने सहज ही
वेश करके सबको निरुद्यमी बना दिया।

जिसे हम आँख से नहीं देख सकते वही अदृष्ट है। अतएव
विनव्य को ही लोग अदृष्ट मानते हैं। जिस का कोई निर्णय
हीं कर सकता, "क्षणादूर्ध्वं न जानामि विधाता किं विधास्यति"
ही अदृष्ट है। पहले से कोई विपद् के प्रतीकार का उपाय न
रके जब विपद् आ पहुँचती है तब उसे अदृष्ट का फल कह
र उसके निवारण की कुछ चेष्टा नहीं करना। जो सर्वदा
अदृष्टही के ऊपर अपने को निर्भर किये रहता है, असल में वही
अदृष्टवादी है। उसे पूरा विश्वास है कि अदृष्ट को कोई टाल
नहीं सकता। इसी से वह विपद्ग्रस्त होने पर ... व्यग्र
न हो कर शान्तभाव

आजकल भारतवर्ष में अदृष्टवादियों की संख्या बहुत बढ़ी है। पुरुषार्थवादी
अदृष्टवाद की जड़ इतनी मज़बूत हो गई है कि पुरुषार्थवादी
उद्यमशील जाति के साथ कई सौ वर्षों से सम्पर्क होने पर भी
अब तक ज़रा भी न हिली। बल्कि और दिन दिन मज़बूत ही
होती है। निरुद्यमी लोगों की संख्या दिन दिन बढ़ती जाती
है। जिस समय भारत में अदृष्टवाद का प्रचार हुआ था, उस
समय भारत की अवस्था और ही थी। तब लोगों को भोजन,
वस्त्र आदि अत्यावश्यक प्रयोजनीय वस्तुओं के लिए कोई चिन्ता
न थी। उन दिनों वस्तु से ही लोग वस्तु ख़रीदते थे। इसी
प्रकार सब लोग अपने अभाव की पूर्ति कर लेते थे। देशा-
न्तरीय पदार्थों के बिना किसी को कुछ कष्ट-बोध न होता था।
रुपये पैसे व्यवहार में बहुत कम आते थे। रुपया इतना महँगा
था कि कौड़ी को लोग रुपया करके समझते थे और जब तक
कौड़ियों से ही अकसर रुपये पैसे का काम चला लेते थे। उस
समय लोग अर्थ को अनर्थ का मूल समझ कर धन का उतना
संग्रह नहीं करते थे। उस समय जो समाज में अत्यन्त दीन
हीन था उसे भी रहने के लिए घर और खाने के लिए अन्न का
अभाव न था। उस समय भारत में अन्न इस बहुतायत से
उपजता था कि लोग थोड़े परिश्रम से भी परिवार-पोषण-योग्य
अन्न पैदा कर लेते थे। गाँव के लोग अपने से अधिक सम्प-
त्तिवालों के साथ प्रतियोगिता करना नहीं जानते थे। जो

स अवस्था में था वह उसी में सुखी था। प्रतियोगिता करने
ी बात केवल वाणिज्यप्रधान शहरों ही में घिरी थी। इन्हीं
ब कारणों से भारतवासी के हृदय में अदृष्टवाद ने सहज ही
वेश करके सबको निरुद्यमी बना दिया।

जिसे हम आँख से नहीं देख सकते वही अदृष्ट है। अतएव
ाचिन्त्य को ही लोग अदृष्ट मानते हैं। जिस का कोई निर्णय
ाहीं कर सकता, "क्षणादूर्ध्वं न जानामि विधाता किं विधास्यति"
ही अदृष्ट है। पहले से कोई विपद् के प्रतीकार का उपाय न
करके जब विपद् आ पहुँचती है तब उसे अदृष्ट का फल कह
कर उसके निवारण की कुछ चेष्टा नहीं करना। जो सर्वदा
अदृष्टही के ऊपर अपने को निर्भर किये रहता है, असल में वही
अदृष्टवादी है। उसे पूरा विश्वास है कि अदृष्ट को कोई टाल
नहीं सकता। इसी से वह विपद्ग्रस्त होने पर भी सहसा व्यग्र
न हो कर शान्तभाव से रहता है। किन्तु जो लोग पुरुषार्थ-
शील हैं, जो अदृष्ट के बल न बैठ कर यथाशक्ति उद्योग करते हैं,
उन पर यदि एकाएक कोई दैवी दुर्घटना आपड़ती है तो पूर्व
सावधानता का अवसर न पाने पर भी वे नहीं घबराते और
भयभीत भी नहीं होते। हाथ पाँव मोड़ कर चुपचाप बैठे भी
नहीं रहते। शीघ्र चाहे विलम्ब से वे अदृष्ट की उपेक्षा करके
पौरुष को ही प्रधान मान कर विपद् दूर करने का प्रयत्न करते
हैं और तब तक उन्हें शान्ति नहीं मिलती जब तक उनका संकट

हैं प्रत्यक्ष देखने में आवेगा कि इस भाग्य-प्रशंसा के मूल में
लस्य, असमर्थता या अस्वस्थता या दूसरी कोई त्रुटि विद्य-
न है। किन्तु वे आत्मवञ्चक अभिमानी व्यक्ति अपनी त्रुटि
पाने के लिए दूसरों की आँखों में यह कह कर धूल फेंकते
कि "दृष्ट की गति को कौन रोक सकता है ? अदृष्ट
ा फल सबको भोगना ही पड़ता है, किस का सामर्थ्य है जो
दृष्ट के फल को खण्डित कर सके ? विधाता को जब जो
रना होता है वही होता है इत्यादि। कितने ही योग्य व्यक्ति
ड़े ही वेतन में चिरकाल तक पड़े रहते हैं और अयोग्य व्यक्ति
न लोगों को अतिक्रम कर अधिक वेतन पाने लगते हैं इसका
ारण क्या ? जो कर्मक्षम व्यक्ति हैं वे अपने गुण का उचित
रस्कार न पाकर और गुण का फल विपरीत देखते देखते यही
सिद्धान्त कर बैठते हैं कि "उनका भाग्य ही खोटा है।" किन्तु
। इस बात को एक बार भी नहीं सोचते कि वह अयोग्य व्यक्ति
थोड़ी शिक्षा, थोड़ी सी शक्ति और थोड़ा सा मस्तिष्कबल
ाकर इस प्रकार उत्तरोत्तर क्यों उन्नति करता जाता है ? वह
शिक्षा, शिष्टता और हृदय के सद्भाव आदि अनेक गुणों से हीन
ोने पर भी जिस कलाकौशल से उसमें भाग्य-रचयिता सन्तुष्ट
और बाध्य होंगे उस कलाकौशल में वह अवश्य प्रवीण है। वह
कलाकौशल क्या है ? अपनी उन्नति की बराबर चेष्टा करते
रहना। जो लोग अपनी उन्नति करना चाहते हैं वे कभी निश्चेष्ट

दूर नहीं होगा। अदृष्ट को पूर्ण रूप से दूर करने में समर्थ न होने पर भी वे कुछ न कुछ कृतकार्य अवश्य होते हैं। [illegible] प्रयत्नवादी तो बिल्कुल ही निर्दोष हो कर रहते हैं। सामान्य लोग जिस अर्थ में "अदृष्ट, दैव, भाग्य, कपाल," आदि शब्द का व्यवहार करते हैं वह उद्यम और अध्यवसाय का विरु बाधक है। कितने ही लोगों को ऐसा कहते सुना है "भाग्य में लिखा होगा तो होगा।" "भाग्य में न लिखा था न हुआ।" "विधाता ने जो भाग्य में लिखा ही नहीं वह कैसे हो। उद्यम करने से क्या होगा? जब विधाता को मंज़ूर नहीं तो हज़ार सिरखपी करने पर भी कुछ न होगा।" "उसका भाग्य ही खोटा है उस का क्या दोष? यदि तुम्हारे भाग्य में बदा होगा तो तुम ज़रूर पाओगे।" इत्यादि। कपार या अदृष्ट या भाग्य ये सभी पुरुषार्थ, उद्यम, अध्यवसाय, उत्साह आदि गुणराशियों की जड़ में दिन दिन कुल्हाड़ी मार रहे हैं।" कितने ही उच्चाभिलाषी युवक दो एक कामों में अकृतकार्य हो कर तुरन्त अपने भाग्य या अदृष्ट को कोसने लगते हैं और उन कामों में फिर हाथ डालने का साहस नहीं करते। जो लोग "भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्" कह कर चिल्लाया करते हैं। समझना चाहिए कि उन लोगों के हृदय में उच्चाभिलाष की आग बुझ गई है। वे माथे पर हाथ रख कर ही समय बिताना चाहते हैं। वे भाग्य की इतनी बड़ाई क्यों करते हैं? यदि इसका कारण ढूँढ़ोगे तो

तुम्हें प्रत्यक्ष देखने में आवेगा कि इस भाग्य-प्रशंसा के मूल में आलस्य, असमर्थता या अस्वस्थता या दूसरी कोई त्रुटि विद्यमान है। किन्तु वे आत्मवञ्चक अभिमानी व्यक्ति अपनी त्रुटि छिपाने के लिए दूसरों की आँखों में यह कह कर धूल फेंकते हैं कि "दृष्ट की गति को कौन रोक सकता है ? अदृष्ट का फल सबको भोगना ही पड़ता है, किस का सामर्थ्य है जो अदृष्ट के फल को खण्डित कर सके ? विधाता को जब जो करना होता है वही होता है इत्यादि। कितने ही योग्य व्यक्ति थोड़े ही वेतन में चिरकाल तक पड़े रहते हैं और अयोग्य व्यक्ति उन लोगों को अतिक्रम कर अधिक वेतन पाने लगते हैं इसका कारण क्या ? जो कर्मक्षम व्यक्ति हैं वे अपने गुण का उचित पुरस्कार न पाकर और गुण का फल विपरीत देखते देखते यही सिद्धान्त कर बैठते हैं कि "उनका भाग्य ही खोटा है।" किन्तु वे इस बात को एक बार भी नहीं सोचते कि वह अयोग्य व्यक्ति थोड़ी शिक्षा, थोड़ी सी प्रशक्ति और थोड़ा सा मस्तिष्कबल पाकर इस प्रकार उत्तरोत्तर क्यों उन्नति करता जाता है ? वह शिक्षा, विज्ञता और हृदय के सद्भाव आदि अनेक गुणों से हीन होने पर भी जिस कलाकौशल से उसमें भाग्य-रचयिता सन्तुष्ट और बाध्य होंगे उस कलाकौशल में वह अवश्य प्रवीण है। वह कलाकौशल क्या है ? अपनी उन्नति की बराबर चेष्टा करते रहना। जो लोग अपनी उन्नति करना चाहते हैं वे कभी निश्चेष्ट

न्हें प्रत्यक्ष देखने में आवेगा कि इस भाग्य-प्रशंसा के मूल में आलस्य, असमर्थता या अस्वस्थता या दूसरी कोई त्रुटि विद्यमान है। किन्तु वे आत्मवञ्चक अभिमानी व्यक्ति अपनी त्रुटि छिपाने के लिए दूसरों की आँखों में यह कह कर धूल फेंकते कि "दृष्ट की गति को कौन रोक सकता है ? अदृष्ट का फल सबको भोगना ही पड़ता है, किस का सामर्थ्य है जो अदृष्ट के फल को खण्डित कर सके ? विधाता को जब जो करना होता है वही होता है इत्यादि। कितने ही योग्य व्यक्ति थोड़े ही वेतन में चिरकाल तक पड़े रहते हैं और अयोग्य व्यक्ति उन लोगों को अतिक्रम कर अधिक वेतन पाने लगते हैं इसका कारण क्या ? जो कर्मक्षम व्यक्ति हैं वे अपने गुण का उचित पुरस्कार न पाकर और गुण का फल विपरीत देखते देखते यही सिद्धान्त कर बैठते हैं कि "उनका भाग्य ही खोटा है।" किन्तु वे इस बात को एक बार भी नहीं सोचते कि यह अयोग्य व्यक्ति थोड़ी शिक्षा, थोड़ी सी प्रशक्ति और थोड़ा सा मस्तिष्कबल पाकर इस प्रकार उत्तरोत्तर क्यों उन्नति करता जाता है ? वह शिक्षा, विज्ञता और हृदय के सद्भाव आदि अनेक गुणों से हीन होने पर भी जिस कलाकौशल से उसमें भाग्य-रचयिता सन्तुष्ट और बाध्य होंगे उस कलाकौशल में वह अपदय प्रवीण है। वह कलाकौशल क्या है ? अपनी उन्नति की बराबर चेष्टा करते रहना। जो लोग अपनी उन्नति करना चाहते हैं वे कभी निश्चेष्ट

ढ़ कारण के द्वारा या अनभिज्ञता दोष से सफलता को प्राप्त
हीं होते, शान्ति का कारण होता है। अदृष्टवादियों के पक्ष में
दृष्ट शान्ति और सहिष्णुता का उत्पादक है। अप्रवाहित जला-
य का पानी जैसे क्रम क्रम से दूषित और अहितकर होता है
से ही स्वाभाविक शान्तिप्रिय जाति के पक्ष में अदृष्टवाद बड़ा
ी हानिकारक हो रहा है। संसार की सभी उन्नत जातियों ने
दृष्ट को तुच्छ कह कर पुरुषार्थ को प्रधान माना है। जो
कान्त अदृष्टवादी हैं, वे उन पुरुषार्थवादियों के अनुग्रह की
छाया में आश्रय ले रहे हैं। दुःख, दारिद्र्य उनके पीछे पीछे घूम
रहा है पर तो भी अदृष्टवाद से पराङ्मुख हो कर वे पुरुषार्थ-
वाद का पक्ष अवलम्बन नहीं करते। एक ओर अदृष्टवादी
लोग बैठे बैठे भविष्य की गणना और अदृष्ट के फलाफल का
विचार कर रहे हैं और दूसरी ओर उद्योगशील पुरुषार्थी लोग
दिन दिन ऋद्धि वृद्धि करके सुयश फैला रहे हैं। इसी से
एडवर्ड डेनिसन ने कहा है कि "भविष्य जानना गुणवत्ता नहीं
है किन्तु उसके लिए उद्यत होना ही गुणवत्ता है।"

पहले कहा जा चुका है कि कितने ही उद्यमशील युवक दो तीन
बार अकृतकार्य होने से अदृष्ट का दोष देकर उद्योग से मुँह फेर
लेते हैं। किन्तु जो लोग अदृष्ट के ऊपर अपने को पूरा निर्भर
नहीं करते वे विफलायास होने पर भी सहसा उद्योग से विमुख
नहीं होते। जो लोग अकृतकार्य होने पर भी उद्योग करना नहीं

स्वर्गीय हरिश्चन्द्रदत्त एक धनवान् व्यक्ति थे। उन्होंने ग्राम्य पाठशाला में कुछ थोड़ा सा लिखना पढ़ना सीख कर दस वर्ष की उम्र में अपने पिता के वाणिज्य-कार्यालय में प्रवेश किया। वे पाँच वर्ष कारबार की शिक्षा प्राप्त कर सोलह वर्ष की उम्र में स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवसाय करने लगे और अपना कार्यकौशल दिखा कर पिता के विश्वासभाजन बन गये। थोड़े ही दिनों में उन्होंने पिता के काम का भार बिल्कुल अपने ऊपर ले लिया। बारह वर्ष के व्यवसाय में उन्होंने दो लाख रुपया लाभ कर दिखाया। एक बार वे पाश्चात्य देश से साठ हज़ार रुपये का सौदा जहाज़ पर लादे लिये आ रहे थे। दैवात् जहाज़ डूब जाने से उनका साठ हज़ार रुपया पानी में मिल गया। इधर तीन चार वर्ष के भीतर अनेक दुर्घटनायें हुईं। उनकी मा मर गई, भाई मर गया, ज़मींदारी के सम्बन्ध में बहुत दिनों तक मुक़द्दमा लड़ना पड़ा। आख़िर ज़मींदारी भी बिक गई। पिता-माता के श्राद्ध में और बेटे बेटी के ब्याह में कुछ अधिक ख़र्च करना पड़ा। इन अनेक कारणों से उनके पास एक पैसा भी न रहा। वे बिलकुल सामान्य अवस्था में प्राप्त हो गये। ऐसी हालत में कितने ही लोग, विशेषतः अदृष्टवादी, हतोत्साह होकर अपने जीवन में फिर उन्नति का मुँह नहीं देखते। किन्तु उद्यमशील साहसी हरिश्चन्द्र व्यवसाय के द्वारा फिर लक्ष्मी की कृपा प्राप्त करके ऐश्वर्यशाली बने। उनकी प्रथम अवस्था में कृतकार्यता, जीवन के मध्यकाल में अप-

रिमित व्यय-जनित दरिद्रता और जीवन के शेष भाग में के द्वारा फिर लक्ष्मी की प्राप्ति—यह सब उनके अपने किये फल था। उनके अदृष्ट का परिणाम न था।

अपने को आपही ठगना

यह बात सुनकर शायद तुम हँसोगे कि "कोई अपने को आपही कैसे ठगेगा? ऐसा कभी हो सकता है? अपनी आँखों में भला आपही कैसे धूल झोंकेगा?" किन्तु यदि तुम ध्यानस्थ होकर विचारोगे तो प्रत्यक्ष देख पड़ेगा कि हम लोगों ने आपही आँखों में कई वार धूलिप्रक्षेप करके कष्ट पाये हैं और वार अपनी वञ्चना पर अनुताप किया है। ऐसे कितने ही लोग जो अपने को आपही ठग कर पीछे पछताते हैं। उन्हें क्या मालूम नहीं होता कि वे अपने को ठग रहे हैं? मालूम नहीं होता। वे जानबूझ कर ही ऐसा जघन्य काम करते मान लो, यज्ञदत्त एक नवयुवक आत्मप्रतारक है। उसके में कोई एक काम करने की वासना उत्कटरूप से जाग्रत उठी है। आज तक गुरुजनों के मुँह से जो कुछ उपदेश सुन चुका है और पुस्तकों में जो वार वार पढ़ चुका है द्वारा तथा अपनी बुद्धि और विवेक के द्वारा भी वह समझ है कि वह काम उसके लिए हानिकारक है। किन्तु उस क

वह इतनी लोलुप दृष्टि से देख रहा है और उस काम के करने के लिए उसकी ऐसी प्रबल इच्छा हो रही है कि वह अनेक प्रकार की युक्ति और तर्क के द्वारा अपने मन को समझा रहा है कि इस काम के करने में कोई पाप या हानि नहीं है। वह अपने मन को यह कह कर सन्तोष देना चाहता है कि ऐसा काम तो समाज के कितने ही बड़े बड़े नामी व्यक्ति किया करते हैं, कितने ही प्रतिभासम्पन्न, गण्य, मान्य व्यक्ति भी इस काम से बचे हुए नहीं हैं। जो काम अनेक बड़े लोगों के द्वारा किया जा चुका है उसके करने में दोष ही क्या। इस प्रकार वह मन को अनेक युक्तियों से समझाने की चेष्टा करता है कि जो काम वह करना चाहता है वह अकर्तव्य नहीं है। इसी को आत्मवञ्चना कहते हैं। इस प्रकार आत्मप्रतारणा करके कितने ही स्त्री-पुरुष कुपथगामी हुए हैं और दिन दिन हो रहे हैं। किन्तु जब उसका दुर्विपाक हाथ आता है तब उनकी आँखें खुलती हैं और अपने ही को अपने पतन का कारण जान कर वे पछताते हैं और जब तब आँसू की धारा बहा कर अपने हृदय की ज्वाला शान्त करते हैं। और बहुत लोग ऐसे भी हैं जो किसी तरह अपनी भूल स्वीकार नहीं करते। मन ही मन वे अपनी भूल समझ कर भी अदृष्ट की दुहाई देते हैं और लोगों के निकट अपने को निरपराध प्रमाणित करना चाहते हैं। ऐसे लोग अपनी ही आँखों में क्या समाज के नेत्रों में भी धूल झोंकते हैं। आत्म-प्रतारकों में इनका नम्बर सब से ऊपर है।

प देखने के लिए लोग जिस तरह तत्पर रहा करते हैं, दूसरों दोष पर अपना मन्तव्य प्रकाश करने में जिस तरह की पटुता खलाते हैं, दूसरों के दोष की समालोचना में जिस तरह समय ताते हैं और आनन्द पाते हैं, दूसरों के दोष को फैलाने के प जैसा कुछ साहस करते हैं, उस तरह यदि अपने दोषों पर ष्टि देते, अपनी त्रुटि स्वीकार कर उसके संशोधनार्थ थोड़ी भी त्परता दिखलाते और अपना दोष प्रकाश करने में संकोच न रते तो समाज आज ऐसी अधोगति को प्राप्त न होता। जो ोग अपना दोष स्वीकार नहीं करते, अपने दोषों का संशोधन हीं करते, और अपने को दोषों से बचाने का साहस नहीं करते थार्थ में वे ही अपने आत्मा को प्रतारित कर पीछे पछताते । यह आत्मप्रतारणा जैसे अन्यान्य कामों में अधःपात का ारण होती है वैसे ही यह व्यापारियों की उन्नति के मार्ग में स्टकस्वरूप हो सर्वनाश का कारण बनती है। यह उन सोदा- ारों को सिर्फ़ निर्धन बना कर ही नहीं छोड़ती, वरञ्च उनके मन का सम्पूर्ण उत्साह, उनके हृदय का सारा साहस और सद्भाव हरण कर लेती है। यहाँ तक कि शरीर को निर्बल और शक्ति- हीन बना डालती है। आत्मप्रतारक व्यक्ति चरित्र-हीन दीन की तरह दूसरों का गलग्रह होकर अर्थात् मुहनाज बन कर बड़े कष्ट से जीवन का भार वहन करते हुए इस संसार से किसी दिन विदा हो जाते हैं। उनके लिए कोई एक बूँद आँसू तक नहीं

प देखने के लिए लोग जिस तरह तत्पर रहा करते हैं, दूसरों
दोष पर अपना मन्तव्य प्रकाश करने में जिस तरह की पटुता
खलाते हैं, दूसरों के दोष की समालोचना में जिस तरह समय
ताते हैं और आनन्द पाते हैं, दूसरों के दोष को फैलाने के
ए जैसा कुछ साहस करते हैं, उस तरह यदि अपने दोषों पर
ष्टि देते, अपनी त्रुटि स्वीकार कर उसके संशोधनार्थ थोड़ी भी
त्परता दिखलाते और अपना दोष प्रकाश करने में संकोच न
रते तो समाज आज ऐसी अधोगति को प्राप्त न होता। जो
ोग अपना दोष स्वीकार नहीं करते, अपने दोषों का संशोधन
हीं करते, और अपने को दोषों से बचाने का साहस नहीं करते
थार्थ में वे ही अपने आत्मा को प्रतारित कर पीछे पछताते
हैं। यह आत्मप्रतारणा जैसे अन्यान्य कामों में अधःपात का
कारण होती है वैसे ही यह व्यापारियों की उन्नति के मार्ग में
कण्टकस्वरूप हो सर्वनाश का कारण बनती है। यह उन सौदा-
गरों को सिर्फ़ निर्धन बना कर ही नहीं छोड़ती, वरञ्च उनके मन
का सम्पूर्ण उत्साह, उनके हृदय का सारा साहस और सद्भाव
हरण कर लेती है। यहाँ तक कि शरीर को निर्बल और शक्ति-
हीन बना डालती है। आत्मप्रतारक व्यक्ति चरित्र-हीन दीन की
तरह दूसरों का गलग्रह होकर अर्थात् मुहताज बन कर बड़े कष्ट
से जीवन का भार वहन करते हुए इस संसार से किसी दिन
विदा हो जाते हैं। उनके लिए कोई एक बूँद आँसू तक नहीं

गिराता। बल्कि लोग यही कहा करते हैं कि "अमुक व्य
अपनी नासमझी के कारण ही नष्ट हुआ"। कोई कोई गर्व
भाव से कहते हैं "वह अपनी करनी से आपही डूबा, "
क्यों, अपने समस्त परिवारों को भी डुबाता गया"।

आत्मप्रतारक व्यक्तियों का परिणाम कभी कभी इससे
अधिक भयङ्कर उठ खड़ा होता है। इसलिए आत्मप्रतारणा
फन्दे में न फँस कर सर्वदा अपनी रक्षा करते रहना चाहिए।

उद्योग

ङ्क न रहने के कारण भारतवासियों को वाणिज्य करने में दिक़तें
लनी पड़ती थीं और और कई तरह की असुविधायें होती थीं।
न बाधाओं को दूर करने के लिए वहाँ "इण्डियन बैंक" स्थापन
रने की इच्छा से १८६१ ईसवी में वे लण्डन गये। किन्तु इस
ाल रुई के कारबार में उनके पिता का सर्वस्वान्त हो गया। इसी
। वे बैङ्क स्थापित न कर सके। इतने बड़े महाजन एकाएक इस
कार विपदस्थ हो जायँ तो फिर उनका कारबार सँभलना असं-
भव हो जाता है। किन्तु जो साहसी, उत्साही, सत्यप्रिय, पुरु-
ार्थशील और व्यवहारकुशल हैं, वे विपद् से नहीं डरते। भारी
े भारी विपत्ति आ पड़ने पर भी वे धैर्य्यच्युत नहीं होते। वे
अदृष्ट की दुहाई देकर अपराधमुक्त होना नहीं चाहते। वे एक
सुयोग में कृतकार्य्य न होने पर चुप चाप बैठ नहीं रहते, वे
दूसरा सुयोग ढूँढ़ते हैं। बार बार क्षतिग्रस्त और आपद्ग्रस्त होने
पर भी व्यवसाय नहीं छोड़ते, बल्कि प्रत्येक बार की विफलता
से वे शिक्षा ग्रहण करते हैं। और भविष्य के लिए सतर्क होजाते
हैं। सुयोग पाकर ताता और उनके पिता ने आबसिनिया की
लड़ाई में कतिपय वस्तु भेजने का ठेका लेकर बहुत लाभ
उठाया, जिससे उनकी हीनता जाती रही।

बम्बई शहर के एक तरफ़ की भूमि बहुत नीची थी। उसमें
समुद्र का जल आने के कारण वह उपसागर—खाड़ी—सी हो
गई थी। उसका नाम "ब्याक की खाड़ी था"। मुद्दत से इस

मनुष्यों के परिधेय वस्त्रों का प्रयोजन समझ कपड़े की कल स्थापित करने का विचार किया। किन्तु कल खरीद लेने ही से क्या हो सकता था? किस तरह से कल चलाई जाती है, इसका जानना भी बहुत ज़रूरी था। यह सोच कर उन्होंने पहले कल चलाना सीखा और उस कल के सम्बन्ध की सब बातें भली भाँति समझ लीं। तदनन्तर इस दिशा के फलस्वरूप १८७७ ईसवी में नागपुर में "एम्प्रेस मिल"* नाम से एक कपड़े की कल स्थापित हुई। भारत में उस समय जितने कलकारखाने थे, उन सबों में यह श्रेष्ठ गिना जाने लगा। देशहितैषी नाना का इस कल के द्वारा देश का हितसाधन करना ही मुख्य उद्देश्य था।

एक बार एक युरोपियन कम्पनी ने जहाज़ का भाड़ा बहुत ज़्यादा बढ़ा दिया। नाना ने उसका प्रतिवाद किया और जब देखा कि प्रतिवाद का कुछ फल न हुआ तब उस कम्पनी से सम्बन्ध तोड़ कर दूसरी कम्पनी के जहाज़ पर माल ले जाने का प्रबन्ध किया और उस कम्पनी के साथ वाक्यबद्ध हुए कि वे अब दूसरे किसी कम्पनी का माल न देंगे। इस कारण नाना का प्रथम कम्पनी के साथ भारी झगड़ा बढ़ा। इस झगड़े में कम्पनी को बदनामी के साथ ही साथ क्षति सहनी पड़ी और नाना को

*एम्प्रेस मिल का संक्षिप्त विवरण "श्रमविभाग और साझे का कारबार" शीर्षक परिच्छेद में लिखा गया है।

नाम से कई जगहों में स्थापित उनके कारखाने, अलेकजेन्ड्रामिल्स, एम्प्रेसमिल्स, स्वदेशीमिल्स, इंडियन स्टीमशिपकम्पनी, मैसूर में रेशम की तिजारत आदि अनेक देशोपकारी काम महा उद्यमी ताता के नाम को चिरस्मरणीय रक्खेगा।

समृद्धिशाली पुरुषों की वीरता

तुम्हें यदि कोई कायर कहे, अथवा डरपोक कहे तो क्या तुम अपना अपमान न समझोगे? ज़रूर तुम अपनी हीनता समझोगे और तुम्हारे सम्मान में इस बात से ज़रूर धक्का लगेगा। कायरपन या भीरुता का तुमने कौन सा काम किया है सो तब तुम्हें शायद ढूँढ़ने से भी न मिलेगा। बल्कि कब तुमने किस साहस का काम किया है, किस दिन तुम भूत का भय न करके अंधेरी रात में अकेले किसी श्मशान के पास होकर आये थे, किस दिन तुमने अपने प्रतिद्वन्द्वी से विजय-लाभ किया था, अथवा किस दिन तुम तैर कर नदी के पार हो गये थे, इन्हीं सब बातों को तुम याद करने लगोगे। कितने ही उजड्ड दुर्बोध विद्यार्थी उस समय अपने उस साहस और वीरता की बात याद करेंगे जो कभी उन्होंने अपने शिक्षक के साथ निडर होकर अशिष्टता का कोई व्यवहार किया था। किन्तु इन सब बातों में वीरता का एक भी लक्षण नहीं पाया जाता। शरीर अधिक बलिष्ठ होने ही से कोई अपने

नाम से कई जगहों में स्थापित उनके कारखाने, अलेकज़ेन्ड्रामिल्स, एम्प्रेसमिल्स, स्वदेशीमिल्स, इंडियन स्टीमशिपकम्पनी, मैसूर में रेशम की तिजारत आदि अनेक देशोपकारी काम महा उद्यमी दाता के नाम को चिरस्मरणीय रक्खेगा।

समृद्धिशाली पुरुषों की वीरता

तुम्हें यदि कोई कायर कहे, अथवा डरपोक कहे तो क्या तुम अपना अपमान न समझोगे? ज़रूर तुम अपनी हीनता समझोगे और तुम्हारे सम्मान में इस बात से जरुर धक्का लगेगा। कायर-पन या भीरुता का तुमने कौन सा काम किया है सो तब तुम्हें शायद ढूँढ़ने से भी न मिलेगा। बल्कि कब तुमने किस साहस का काम किया है, किस दिन तुम भूत का भय न करके अंधेरी रात में अकेले किसी श्मशान के पास होकर आये थे, किस दिन तुमने अपने प्रतिद्वन्द्वी से विजय-लाभ किया था, अथवा किस दिन तुम तैर कर नदी के पार हो गये थे, इन्हीं सब बातों को तुम याद करने लगोगे। कितने ही उजड्ड दुर्बोध विद्यार्थी उस समय अपने उस साहस और वीरता की बात याद करेंगे जो कभी उन्होंने अपने शिक्षक के साथ निडर होकर अशिष्टता का कोई व्यवहार किया था। किन्तु इन सब बातों में वीरता का एक भी लक्षण नहीं पाया जाता। शरीर अधिक बलिष्ठ होने ही से कोई अपने

[illegible] भी नहीं। [illegible]
[illegible] सकते हो, [illegible]
सकते हो, [illegible] सन्तान को पहचान [illegible]
हो तो भी तुम [illegible]
तुम्हें [illegible] न कहेंगे। यदि तुम अपने निज के [illegible] न
सकते तो हम यह कह [illegible] कि तुम अपने नहीं सह [illegible] हैं
दूसरे को तुम क्या हराओगे? जब तुम अपने को आप ही न
दबा सकते तो दूसरे को क्या दबाओगे? जो शत्रु तुम्हारी आँखों
के सामने है, माना कि उसे तुम नाना प्रकार के अस्त्र, शस्त्र की
विविध भाँति [illegible] से अपने कब्जे में ला सकते हो किन्तु जिसे
तुम देख नहीं पाते, जिसे छू तक नहीं सकते, जो अदृश्य है और
अस्पृश्य है और जो छिपे छिपे तुम्हारा सर्वनाश कर रहा है, जो तुम्हें
बहका कर अनेक कुमार्गों में घुमाये फिरता है और जिसने तुम्हें
इस तरह अपने कब्जे में जकड़ रक्खा है कि तुम्हें स्वांस लेने का
अवकाश नहीं देता, जो तुम्हारे ज्ञान, बुद्धि, विवेक का द्वार
बन्द करके मायावी महिरावण की भांति तुम्हारा परमहितैषी
बन्धु बन कर तुम्हें सर्वदा मोहाच्छन्न करके रखना चाहता है,
उस अत्यन्त प्रबल हृदयमन्दिरस्थ शत्रु को दबाने के लिए तुम क्या
उपाय कर रहे हो? उसने सम्पूर्ण रूप से तुम पर प्रभुत्व जमा
कर तुम्हें अपना सेवक बना रक्खा है और वह भांति भांति का
च नचा रहा है। क्या तुमने कभी इस बात पर ध्यान दिया

है ? तुम अच्छी तरह जानते हो कि खूब तड़के उठने से तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा रहेगा, पढ़ने का सुभीता होगा और सभी काम अपने समय पर सम्पन्न होंगे। तुम बड़े सबेरे उठना भी चाहते हो, किन्तु तुम्हारा एक प्रबल शत्रु, आलस्य बिछौने से उठने नहीं देता, मानो उसने चारपाई से तुम्हें बाँध रक्खा है। तुम बार बार उठने की कोशिश भी करते हो पर तुमसे उठा नहीं जाता। जब तक दया करके वह तुम्हें छोड़ न देगा तब तक तुम बराबर पड़े रहोगे। तुम्हारा सामर्थ्य नहीं कि उसे पराभूत कर उठ खड़े होओ। जब तुम एक आलस्यरूपी शत्रु को नहीं जीत सकते, तब तुम वीरता का और काम ही क्या करोगे। भारत के परम विख्यात अध्यापक प्रफुल्ल चन्द्रराय महाशय अस्वस्थशरीर में भी कैसे आलस्यहीन बने रहते थे, क्या तुम स्वस्थ सबल शरीर लेकर भी उनके समान फुरतीले हो सकोगे ? उन्हें अजीर्ण (बदहज़मी) रोग तो था ही उस पर निद्रानाश रोग का कष्ट भी उन्होंने बहुत दिन तक सहा। चिकित्सक के बारंबार मना करने पर उन्होंने रात में वैज्ञानिक विषय का अनुशीलन करना छोड़ा। वक़्त की पाबन्दी रहते भी वे अपने कर्तव्य-साधन में कभी आलस्य नहीं करते, कठिन से भी कठिन कामों को करही डालते हैं। वे आवश्यक उचित कामों से कभी नहीं डरते, क्योंकि वे आलस्यरहित और उद्योगी पुरुष हैं। वे अपने कर्तव्य को नियमपूर्वक ठीक समय पर किया करते हैं। जो कर्तव्यशील हैं क्या

जो अपनी चेष्टा और अध्यवसाय से ख्यात हुए हैं, वे सब कुछ रात रहते ही शय्या का त्याग करते थे। उन लोगों के चरित्रबल के सम्मुख आलस्य ठहर ही नहीं सकता था। बेंजमिन फ्राङ्कलिन्, फ्रेडरिक दी ग्रेट, सर वाल्टर स्काट आदि जगद्-विदित समृद्धिशाली दो घड़ी रात रहते ही उठते थे और वे लोग प्रातःकाल उठने के अनेक लाभ बतला गये हैं। प्रातः स्मरणीय राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशय जो अपने कर्तव्य-पालन में वीरता का परिचय दे गये हैं वह और लोगों के लिए दुर्लभ है। वे केवल आलस्य ही को जीते हुए न थे, लोभ, विलासप्रियता, स्वार्थपरता, द्वेष और अहङ्कार आदि जितने अदृश्य शत्रु हैं, कोई उनके सामने ठहरने का साहस नहीं करता था। जो समृद्धिमान पुरुष हैं, उनकी वीरता का यही अतुल प्रताप है। वास्तव में वही वीर पुरुष हैं जो इन अदृश्य शत्रुओं के वशवर्ती नहीं होते। क्या तुम इन आदर्श पुरुषों की जीवनी को सामने रख अपने जीवन को परिचालित कर सकोगे? किन्तु तुम में वह उद्योग, वह कष्ट-सहिष्णुता और स्वार्थत्याग कहाँ? जब आलस्यरूपी शत्रु तुम्हें घेरता है तब कर्तव्य-बुद्धि तुम्हें यह कह कर उत्तेजित करती है कि "क्या तुम मर्द नहीं हो? क्या तुम वीर कहा कर लोगों में परिचित होने के अभिलाषी नहीं हो? क्या आरोग्य लाभ कर प्रसन्न मन से दिन बिताना तुम्हें पसन्द नहीं? नींद से छुटकारा

नीतिपथ से चल सको ? तुम्हारे सभी साहस, सभी शक्तियाँ इस प्रवृत्ति के आगे बेकार होती हैं, यही तो तुम्हारी वीरता है। क्या इसी वीरता पर तुम व्यवसायी बनोगे ? क्या इसी वीरता पर निर्भर करके तुम लक्ष्मीवान बनने की लालसा कर रहे हो ? क्या इसी वीरता पर तुम ऋद्धि प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हुए हो ? जब तक तुम सच्ची वीरता धारण न करोगे तब तक कृतकार्य्य न हो सकोगे। जिस रीति से जो काम करना चाहिए वह उसी रीति से करने पर सफल हो सकता है। अयुक्त रीति से कोई कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता। सीमातिक्रान्त परिश्रम करके भी कोई कामयाबी हासिल नहीं कर सकता। प्रमाण से अधिक श्रम करने से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। स्वास्थ्य बिगड़ने पर काम ज्यों का त्यों पड़ा रह जाता है अथवा नष्ट हो जाता है। जो लोग अमानुषिक परिश्रम करते हैं अथवा ख़ूब लम्बे चौड़े डील डौल लेकर विशेष बल का काम कर दिखाते हैं, संसार के लोग प्रायः उन्हें राक्षस के साथ तुलना देकर कहते हैं—"अमुक व्यक्ति काम करने में राक्षस को भी मात किये देता है। अमुक व्यक्ति बल में राक्षस को भी जीते हुए है"। किन्तु इस आसुरी साहस या आसुरिक बल से ऋद्धिप्राप्ति-सम्बन्धी कोई कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता। जब तुम देव-बल प्राप्त करोगे, सात्विक वृत्ति का अवलम्बन करोगे, तब तुम अवश्य ही सिद्धि प्राप्त करोगे। देवता और असुर दोनों मिल कर जब

समुद्र मथने लगे तब अनेक दुर्लभ रत्नों के साथ महालक्ष्मी
निकली थी, किन्तु लक्ष्मी का एक मात्र अधिकार देवाधि
महापुरुष विष्णु को ही प्राप्त हुआ।

"वाणिज्ये वसते लक्ष्मीः" यह एक प्रचरित वाक्य
पाश्चात्य देशवर्ती इस समय जिस विज्ञान-बल से समुद्र म
करके देशदेशान्तर में बनज-व्यापार करते हैं और जिन सब गु
के बल लक्ष्मी प्राप्त करके घर लौटते हैं उन सब गुणों को हासि
करने के लिए क्या तुम कभी कुछ प्रयत्न करते हो? वाणि
व्यवसाय के कामों में पूरी सफलता प्राप्त करके जो लोग
बड़े धनाढ्य हो गये हैं उन लोगों का स्वभाव कैसा था
उनकी जीवनी पढ़ने से तुम्हें ज्ञात होगा। उन लोगों के स्वभ
में क्या विशेषता थी इस पर तुमने कभी ध्यान दिया है? वे ले
कैसे उच्चाभिलाषी, साहसी, परिश्रमी, कष्टसहिष्णु, मितव्य
सत्यनिष्ठ, समयनिष्ठ और नियमनिष्ठ थे; इन बातों की ओर क
दृष्टि दी है। उन लोगों के साहस और शक्ति के सामने प्र
प्रकट, क्या गुप्त सभी शत्रु मुँह छिपाये रहते थे। वे अ
सङ्कल्प में सर्वदा दृढ़ बने रहते थे। उन लोगों ने उच्च आद
को सामने रख आलस्य, विलास-प्रियता, ईर्ष्या, द्वेष आदि अन्त
शत्रु और प्रतियोगिता, बाधा-विघ्न, विपद आदि बाहरी शत्रु
के साथ निर्भीकभाव से सच्चे वीर की तरह लड़ कर उन प
विजय प्राप्त किया था। ऐसे व्यवसाइयों को वे शत्रु किसी तर

क्यों कर हो सकती है ? जो लोग धनवान् के घर में जन्म लेक बाल्यकाल की कुशिक्षा से और युवावस्था के अत्याचार से अपना स्वास्थ्य खो बैठते हैं, वे पूर्वसञ्चित धन को तो नष्ट करते हैं, इसके सिवा उपार्जन में अक्षम हो कर बहुत शीघ्र धनहीन भी हो जाते हैं। सुख-सौभाग्य से पले हुए धनी व्यक्ति के सुकुमार कुमार दरिद्रता के कठोर शासन में कब तक जीवित रह सकते हैं ? दिन रात शोच में डूबे रहने के कारण उनका स्वास्थ्य और भी दिन दिन बिगड़ता जाता है और शीघ्र ही उनका आयु निःशेष हो जाता है। धन की अपेक्षा स्वास्थ्य का मूल्य अधिक है और स्वास्थ्य की अपेक्षा चरित्र मूल्यवान् है।

"धन न रहा तो क्या हुआ जो तन रहा निरोग।
दुश्चरित्र तन रोगयुत मिटै सकल सुखभोग॥"

स्वास्थ्यहीन मनुष्य इस अनुपम अमूल्य धन रूपी चरित्र को सुरक्षित रखने में भी अक्षम होता है। कारण यह कि दैहिक दुर्बलता हृदय को कमज़ोर बना डालती है, हृदय की कमज़ोरी से कौन ऐसा बुरा काम है जो लोग नहीं कर सकते ? हृदय की दुर्बलता से धार्मिक और सामाजिक नियमों का भी यथावत् पालन नहीं हो सकता। दुर्बल हृदय के मनुष्य, भीरुस्वभाव, स्वार्थ-परायण, पराश्रित, श्रमविमुख, अशिष्ट और छलकौशल से अपना काम चलानेवाले होते हैं। स्वास्थ्यहीन मनुष्य स्वभाव से ही आलसी और दीर्घसूत्री होते हैं। चक्रवर्ती राजा ही क्यों न
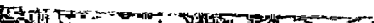
जी नहीं लगता। मानो संसार में एक भी उपचार अब उनके दिल बहलाने का बाक़ी न रहा। इसीसे क्षणिक उत्तेजना और मनोविनोद के लिए उन्होंने मद्य सेवन करना आरम्भ कर दिया। धीरे धीरे मद्यपान का प्रमाण बढ़ता गया। साथी लोग दिन दिन जुटने लगे। अब रोज़ही रोज़ वे सुख का नय देखने लगे, किन्तु यह नयापन देखना उनके सर्वनाश का का हो रहा है, यह उन्हें नहीं सूझता। किन्तु ये सब बातें चरित्रव सुशिक्षित धनवानों में नहीं पाई जातीं। वे मद्यपानादि व्यवह को मनुष्यजीवन के लिए अत्यन्त अनिष्टकारी समझते हैं। धनवान् चरित्रवान् हैं, वे ऐसा काम कभी नहीं करते जिस उनका स्वास्थ्य विगड़े। कर्मक्षेत्र में अस्वस्थ लोगों की उन्नति नहीं होती। छापेख़ाने के कितने ही कर्मचारी जिन्हें लोभ की मात्रा अधिक है, दिन भर काम करके वाहरी आय के लिए रात में कई घण्टे तक, यहाँ तक कि कभी कभी सारी रात काम कर के प्रातः अपने घर आते हैं और जहाँ तक जल्द हो सकता है स्नान भोजन कर के फिर दफ़्र में काम करने जाते हैं। इस जानलेवा मिहनत के द्वारा वे पहले रुपया अच्छा कमाते हैं। किन्तु इस विषम परिश्रम के विषमय फल से उनका स्वास्थ्य शीघ्रही ख़राब हो जाता है। तब उनको पहले का सा उत्साह नहीं रहता और न उनमें परिश्रम करने का सामर्थ्य ही रहता है। दैहिक दुरवस्था के साथ ही साथ मानसिक बल का भी

जी नहीं लगता। मानो संसार में एक भी उपचार अब दिल बहलाने का बाकी न रहा। इसीसे क्षणिक उत्तेजना मनोविनोद के लिए उन्होंने मद्य सेवन करना आरम्भ कर दिया धीरे धीरे मद्यपान का प्रमाण बढ़ता गया। साथी लोग भी दिन दिन जुटने लगे। अब रोज़ही रोज़ वे सुख का नयापन देखने लगे, किन्तु यह नयापन देखना उनके सर्वनाश का कारण हो रहा है, यह उन्हें नहीं सूझता। किन्तु ये सब बातें चरित्रवान सुशिक्षित धनवालों में नहीं पाई जातीं। वे मद्यपानादि व्यवहार को मनुष्यजीवन के लिए अत्यन्त अनिष्टकारी समझते हैं। जो धनवान् चरित्रवान् हैं, वे ऐसा काम कभी नहीं करते जिससे उनका स्वास्थ्य बिगड़े। कर्मक्षेत्र में अस्वस्थ लोगों की उन्नति नहीं होती। छापेख़ाने के कितने ही कर्मचारी जिन्हें लोभ की मात्रा अधिक है, दिन भर काम करके बाहरी आय के लिए रात में कई घण्टे तक, यहाँ तक कि कभी कभी सारी रात काम कर के प्रातः अपने घर आते हैं और जहाँ तक जल्द हो सकता है स्नान भोजन कर के फिर दफ़्तर में काम करने जाते हैं। इस जानलेवा मिहनत के द्वारा वे पहले रुपया अच्छा कमाते हैं। किन्तु इस विषम परिश्रम के विषमय फल से उनका स्वास्थ्य शीघ्रही ख़राब हो जाता है। तब उनको पहले का सा उत्साह नहीं रहता और न उनमें परिश्रम करने का सामर्थ्य ही रहता। दैहिक दुरवस्था के साथ ही साथ मानसिक बल का भी

कोई कोई युवक रूखा सूखा अपुष्टिकारक भोजन करके
कोई आधे ही पेट खाना खाकर प्रमाणाधिक क्लेशकर
व्यायाम करते हैं और स्वास्थ्यसम्पन्न होने के बदले स्वास्थ
होकर रुग्ण होजाते हैं। इस तरह शरीर-परिचालन
चाहिए जिसमें स्वास्थ्य भङ्ग न हो। स्वास्थ्य की रक्षा ही व्या
का मुख्य उद्देश्य है। जिस व्यायाम से स्वास्थ्य में हानि प
वह व्यायाम किस काम का ? सुबह और शाम के वक्त
हवा में टहलना, नाव खेना, तैरना, लकड़ी काटना, मिट्टी खो
और गेंद खेलना आदि स्वास्थ्य-रक्षा के लिए उत्कृष्ट उपाय
खाने और पीने के सम्बन्ध में भी विशेषतः ध्यान रखना चाहि
नियमित समय पर प्रसन्न मन से परिमित भोजन करना चाहि
आहार्य्य पदार्थ और पीने का पानी ख़ूब साफ़-सुथरा और पु
कर न होने से स्वास्थ्य में हानि पहुँचती है। सिर्फ़ कसरत क
ही से क्या हो सकता है ? अपुष्टिकर भोजन, दूषित जल, अप
मित आहार या अत्यल्प आहार, अधिक पानी पीना या प्या
लगने पर पानी न पीना, अधिक रात तक जगना, दिन निक
आने पर भी चारपाई पर पड़े रहना, मादक पदार्थों क
सेवन करना, बँधी हुई या गन्दी हवा में साँस लेना, जिस घ
में हवा न आती हो, या जो बहुत मैला हो उस घर में रहना
मलमूत्र के वेग को रोकना आदि ये सभी स्वास्थ्य बिगाड़ने वा
हैं। स्वास्थ्य-रक्षा के लिए

पति व्यक्ति मद्यपान के द्वारा विपद्ग्रस्त हो कर असमय में
संसार से चल बसे हैं, यह बात किसी से छिपी नहीं है।
हज़ारों उदाहरण ढूँढ़ने से मिल सकते हैं। मद्य पीना
इस विषय में कितने ही सिद्धान्त हुए हैं और हो रहे हैं।
सिद्धान्त-विषयों को पृथक् पृथक् लिखने से लेख बहुत
जायगा इसलिए उन सिद्धान्तों का सार मात्र यहाँ
किया गया है।

डाक्टर कार्पेंटर* का कथन है कि १८८९ ई० में
की ओर से जो मदरास सैनिकों की मृत्यु संख्या की
निकली थी, उस में मात्राधिक मद्यपायियों और
व्यक्तियों की संख्या अधिक थी। प्रमाणाधिक पीनेवाले
पीछे ८.८५६ प्रमाण से पीनेवाले सैकड़े पीछे २.३१७ और
मादक से सर्वथा विरत व्यक्ति सैकड़े में १.१११ मरे थे।

लंडन के "United Kingdom and General Pro-
dent Institution" की पन्द्रह वर्ष की परीक्षा से भी यही

---

* The physiology of Temperance and T
abstinence by W. B. Carpenter M.D., F.R.S., G
London; Bell and Daldy. "The relation of Alc
to bad sanitation" by J. J. Ridge, M.D., I
B.A., B.Sc., London, L.R.C.P. London, M.R.
Eng.; &c., &c.

दूसरा अध्याय

आय-व्यय (आमद-खर्च)

जिस देश के लोग अधिक दरिद्र हों, समझना चाहिए कि हाँ शिक्षा, सभ्यता और पुरुषार्थ का अभाव है। किन्तु यदि ह देखने में आवे कि किसी जाति में शिक्षा, सभ्यता और रुषार्थ यथेष्ट हैं पर उनके घर से दरिद्रता नहीं हटती तो ानना चाहिए कि उनमें मितव्ययिता का अभाव है। जो लोग हिसाब खर्च करते हैं, उनके घर से दारिद्र्य का हटना कठिन । कोई कोई कहते हैं कि "जिसे अपव्यय करने की आदत हो ई है उसे लोग मितव्ययी कैसे बना सकते हैं?" स्वभाव का दलना कठिन अवश्य है। इसमें सन्देह नहीं। किन्तु वह साध्य नहीं है। जो अमितव्ययी हैं, वे द्रव्य के बिना कितने ही ावश्यक पदार्थों का अभावजनित कष्ट सहते सहते और ऋण े भार से दब कर दुःख से अपना जीवन बिताते बिताते कितनी बार प्रतिज्ञा करते हैं कि "अब खूब समझ बूझ कर खर्च करेंगे। वृथा एक पैसा भी खर्च न करेंगे।" किन्तु न मालूम रिद्रता की उन पर कैसी बुरी दृष्टि है कि वे किसी तरह

दरिद्रता के हाथ से छुटकारा नहीं पाते। उनकी अभिलाषा नष्ट
क्या हो जाती है? उनके सिर से ऋण का भार क्यों नहीं उत
वे तो बड़े ही सज्जन हैं, शिक्षित भी हैं, उनका स्वास्थ्य भी अ
है, परिश्रमी भी हैं, पुरुषार्थशील भी हैं। और जिन सब गु
के रहने से लोग धनोपार्जन कर सकते हैं वे सभी गुण उनमें है
कुछ शौकीन नहीं रहते, नशा भी नहीं, चार पैसा कमाते भी हैं
तब उन्हें पैसा अभाव क्यों? यदि कोई व्यक्ति इनका अभाव
त्रुटि देखना चाहे तो किसी महीने की पहली या दूसरी तारी
को उनके घर पर जाय, वहां जाकर देखेगा "मोदी अपनी ख
बही लेकर ऋण लेने के लिए बैठा है। ग्वाला दूध का दा
मांग रहा है। हलवाई और बजाज़ आदि अपने अपने बाकी
दाम के लिए बैठे हैं। इन लोगों ने बाबू साहब के घर की
सभी आवश्यक वस्तुएं एक महीने से बराबर उधार ही दी
हैं। किसी ने चावल, आटा, घी आदि, किसी ने मिठाई
किसी ने कपड़े उधार दिये हैं, और किसी ने खेल-तमाशे की
चीज़ें नज़र की थीं। वे लोग सब अपना अपना ऋण और
इनाम लेने के लिए आये हैं। गृहपति ने उन लोगों का ऋण
चुकाते चुकाते अपने महीने भर की सारी कमाई भुगतान क
जबरदस्त ऋणवाले लोगों के हाथ से छुटकारा पाया। जो
कोमल स्वभाव के थे उन्हें समझा बुझा कर अगले मास
चुका देने का वादा करके विदा किया। थोड़ी देर

कर्तव्य

आमद से ख़र्च कम करना, यही प्रथम कर्तव्य है। जो आय की अपेक्षा अधिक व्यय करते हैं वे ऋणग्रस्त, मुहताज़ और दुर्दशापन्न होंगे, इसमें सन्देह क्या? अमितव्ययी लोग अधिकांश दुश्चरित्र, निस्तेज और अल्पायु होते हैं। हमने कितने ही धन-कुबेर ज़मींदारों के उत्तराधिकारी सन्तान की बात सुनी है। जो अपने पुरखा के अतुल ऐश्वर्य को पाकर भी फ़िज़ूलख़र्ची के कारण थोड़े ही दिनों में सर्वस्वान्त करके पागल हो गये हैं अथवा आत्मघात करके अपने कुकर्म का परिचय दे गये हैं। यह बहुधा देखने में आता है कि कितने ही ज़मींदार के लड़के आमद की अपेक्षा ख़र्च अधिक करते हैं। इस का परिणाम यह होता है कि वे अपने अधिकार से हटा दिये जाते हैं, ज़मींदारी का काम उनके हाथ से ले लिया जाता है और गवर्नमेंट "कोर्ट आफ़ वार्ड" के हाथ उनकी ज़मींदारी का भार सौंपती है और जहाँ तक हो सके कम ख़र्च करने का उसे आदेश देती है। वे अमितव्ययी धनिक नवकुमार सभ्य समाज में अयोग्य गिने जाते हैं और गवर्नमेंट-प्रदत्त अल्प वेतन से अपना निर्वाह करते हैं। फ़िज़ूल-ख़र्ची के कारण जब बड़े बड़े धनाढ्य व्यक्तियों की यह दुर्दशा है। तब साधारण स्थिति वाले गृहस्थों की तो कोई बात ही नहीं।

देखने में आवेंगे। जिस ख़र्च की कोई ज़रूरत नहीं वह ख़
किया जाय तो उसी को फ़िजूलख़र्ची कहते हैं। उसी फ़िजूल
ख़र्ची के कारण ऋण-ग्रस्त होकर लोग चिन्तित रहा करते हैं
और सुख स्वच्छन्द से अपना जीवन व्यतीत करने में असम
होते हैं। यह फ़िजूलख़र्ची ही दारिद्र्य रोग का मुख्य कारण है
मितव्ययिता का अभ्यास करना उस रोग का महौषध है। मित
व्ययी होने के लिए न कुछ ख़र्च करना पड़ता है और न कुछ विशे
परिश्रम ही करना पड़ता है। केवल कुछ नियमों का पाल
अवश्य करना पड़ता है। किसी कठिन रोग से मुक्त होने के लि
जैसे नियमपूर्वक औषध सेवन करना होता है और कुपथ्
से बच कर रहना होता है उसी तरह अपव्ययी को भी दारिद्र
रोग से मुक्त होने के लिए पथ्य-कुपथ्य के ऊपर ध्यान रख कर
चलना ज़रूरी है। इसके लिए जिन सब नियमों पर ध्यान रखना
चाहिए एक एक कर उन सबों का नामोल्लेख करना असम्भव
है। जो काम उद्देश्यसिद्धि के अनुकूल हों, उनका स्वीकार करना
और जो प्रतिकूल हो उसका त्याग करना यही मितव्ययिता के
साधारण नियम हैं। मितव्ययिता के सम्बन्ध में यहाँ कितने ही
नियमों का उल्लेख किया जाता है जो किसी अवस्था में भी
उल्लङ्घन करने योग्य नहीं हैं।

कर्तव्य

आमद से ख़र्च कम करना, यही प्रथम कर्तव्य है। जो आय की अपेक्षा अधिक व्यय करते हैं वे ऋणग्रस्त, मुहताज और दुर्दशापन्न होंगे, इसमें सन्देह क्या? अमितव्ययी लोग अधिकांश दुश्चरित्र, निस्तेज और अल्पायु होते हैं। हमने कितने ही धन-कुबेर ज़मींदारों के उत्तराधिकारी सन्तान की बात सुनी है। जो अपने पुरखा के अतुल ऐश्वर्य को पाकर भी फ़िज़ूलख़र्ची के कारण थोड़े ही दिनों में सर्वस्वान्त करके पागल हो गये हैं अथवा आत्मघात करके अपने कुकर्म का परिचय दे गये हैं। यह बहुधा देखने में आता है कि कितने ही ज़मींदार के लड़के आमद की अपेक्षा ख़र्च अधिक करते हैं। इस का परिणाम यह होता है कि वे अपने अधिकार से हटा दिये जाते हैं, ज़मींदारी का काम उनके हाथ से ले लिया जाता है और गवर्नमेंट "कोर्ट आफ़ वार्ड" के हाथ उनकी ज़मींदारी का भार सौंपती है और जहाँ तक हो सके कम ख़र्च करने का उसे आदेश देती है। वे अमितव्ययी [illegible]निक नवकुमार सभ्य समाज में अयोग्य गिने जाते हैं और [illegible]वर्नमेंट-प्रदत्त अल्प वेतन से अपना निर्वाह करते हैं। फ़िज़ूल-[illegible]र्ची के कारण जब बड़े बड़े धनाढ्य व्यक्तियों की यह दुर्दशा है। [illegible]ब साधारण स्थिति वाले गृहस्थों की तो कोई बात ही नहीं।

देखने में आवेंगे। जिस ख़र्च की कोई ज़रूरत नहीं वह ख़र्च किया जाय तो उसी को फ़िज़ूलख़र्ची कहते हैं। उसी फ़िज़ूलख़र्ची के कारण ऋण-ग्रस्त होकर लोग चिन्तित रहा करते हैं और सुख स्वच्छन्द से अपना जीवन व्यतीत करने में असमर्थ होते हैं। यह फ़िज़ूलख़र्ची ही दारिद्र्य रोग का मुख्य कारण है। मितव्ययिता का अभ्यास करना उस रोग का महौषध है। मितव्ययी होने के लिए न कुछ ख़र्च करना पड़ता है और न कुछ विशेष परिश्रम ही करना पड़ता है। केवल कुछ नियमों का पालन अवश्य करना पड़ता है। किसी कठिन रोग से मुक्त होने के लिए जैसे नियमपूर्वक औषध सेवन करना होता है और कुपथ्य से बच कर रहना होता है उसी तरह अपव्ययी को भी दारिद्र्य रोग से मुक्त होने के लिए पथ्य-कुपथ्य के ऊपर ध्यान रख कर चलना ज़रूरी है। इसके लिए जिन सब नियमों पर ध्यान रखना चाहिए, एक एक कर उन सबों का नामोल्लेख करना असम्भव है। जो काम उद्देश्यसिद्धि के अनुकूल हों, उनका स्वीकार करना और जो प्रतिकूल हों उनका त्याग करना यही मितव्ययिता का साधारण नियम है। मितव्ययिता के सम्बन्ध में यहाँ जितने नियमों का उल्लेख किया जाता है जो किसी अवस्था में भी उल्लङ्घन करने योग्य नहीं हैं।

कर्तव्य

आमद से खर्च कम करना, यही प्रथम कर्तव्य है। जो आय की अपेक्षा अधिक व्यय करते हैं वे ऋणग्रस्त, मुहताज़ और दुर्दशापन्न होंगे, इसमें सन्देह क्या ? अमितव्ययी लोग अधिकांश दुश्चरित्र, निस्तेज और अल्पायु होते हैं। हमने कितने ही धन-कुबेर ज़मींदारों के उत्तराधिकारी सन्तान की बात सुनी है। जो अपने पुरखा के अतुल ऐश्वर्य को पाकर भी फ़िज़ूलखर्ची के कारण थोड़े ही दिनों में सर्वस्वान्त करके पागल हो गये हैं अथवा आत्मघात करके अपने कुकर्म का परिचय दे गये हैं। यह बहुधा देखने में आता है कि कितने ही ज़मींदार के लड़के आमद की अपेक्षा खर्च अधिक करते हैं। इस का परिणाम यह होता है कि वे अपने अधिकार से हटा दिये जाते हैं, ज़मींदारी का काम उनके हाथ से ले लिया जाता है और गवर्नमेंट "कोर्ट आफ़ वार्ड" के हाथ उनकी ज़मींदारी का भार सौंपती है और जहाँ तक हो सके कम खर्च करने का उसे आदेश देती है। वे अमितव्ययी धनिक नवकुमार सभ्य समाज में अयोग्य गिने जाते हैं और गवर्नमेंट-प्रदत्त अल्प वेतन से अपना निर्वाह करते हैं। फ़िज़ूल-खर्ची के कारण जब बड़े बड़े धनाढ्य व्यक्तियों की यह दुर्दशा है। तब साधारण स्थिति वाले गृहस्थों की तो कोई

ख़र्च का हिसाब अपने ही हाथ में रखना चाहिए और जिस दिन जिस काम में जितना ख़र्च हो वह लिख लेना चाहिए। इसके साथ ही साथ यह भी देखना चाहिए कि इन में कहाँ तक ख़र्च घटाया जा सकता है। अपनी अवस्था पर ध्यान देकर जो अपव्यय जान पड़े उस मद को ख़ारिज कर देने से ख़र्च घट सकता है। सद्व्यय और असद्व्यय तथा आवश्यक और अनावश्यक पर बराबर दृष्टि रखने से लोग अपने ख़र्च को बहुत कुछ कम कर सकते हैं। इसका समझना कुछ कठिन नहीं है ज़रा ध्यान देने ही से लोग समझ सकते हैं। संचय के द्वारा भविष्य के लिए कुछ पूँजी जमा करने का यह एक अच्छा उपाय है।

त्याज्य

"जितना आमद उतना ख़र्च" यह जो एक लोकोक्ति प्रचलित है, इसका मतलब यही कि "आमद को बिलकुल ख़र्च कर डालना उसमें एक पैसा भी बचा कर न रखना।" जो लोग ऐसा करते हैं वे तत्काल भले ही ऋणग्रस्त न हों किन्तु किसी प्रकार का आवश्यक प्रयोजन पड़ जाने पर अपने पास द्रव्य न रहने के कारण उन्हें ज़रूर कर्ज़ लेना पड़ता है। वे उस कर्ज़ के चुकाने की फ़िक्र अपनी सारी ज़िन्दगी के सुख को बरबाद कर डालते हैं।

इसलिए सुख-स्वच्छन्द से रहने, परापेक्षी न होने और परोपकार करने के लिए आय की अपेक्षा व्यय कम करना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है। यदि अधिक न बचा सकें तो अपने आय का दशांश तो ज़रूर ही बचाना चाहिए। वह यों बचाया जा सकता है कि जो दस पाता है उसे समझना चाहिए कि वह नौ पाता है। जिनका मासिक आय १००) हैं उन्हें समझना चाहिए कि वे नब्बे ही पाते हैं और उतने ही में उन्हें अपने सभी आवश्यक कामों को सँभालना चाहिए। जो कुछ जमा कर सकते हैं वही समय पर द्रव्य का सद् व्यवहार कर सकते हैं और विपत्ति के समय उद्धार पा सकते हैं। किसे कितना बचाना चाहिए इस विषय में अनेक मुनियों के अनेक मत हैं। उन लोगों ने आमदनी के सोलहवें हिस्से से लेकर आधे तक बचाने की सम्मति दी है। सबके लिए सञ्चय का एक ही नियम नहीं हो सकता। सब लोग अपनी अवस्था के अनुसार सञ्चय करने का नियम बाँध सकते हैं। यह बात बहुत ठीक है कि अतिरिक्त खर्च की अपेक्षा अतिरिक्त सञ्चय करना अच्छा है। स्माइल्स साहब ने कहा है—"प्रथम त्रुटि का संशोधन करना कठिन है, प्रथम त्रुटि के संशोधन होने पर दूसरी त्रुटि का संशोधन सहज ही हो सकता है"।

कभी कोई चीज़ उधार न लो

जहाँ तक सम्भव हो नक़द दाम देकर ही प्रयोजनीय वस्तु
ादो, कारण यह कि जो चीज़ तुम उधार लोगे उसका दाम
हें कुछ अधिक देना पड़ेगा। और किसी किसी समय उधार
चीज़ों में ठगे भी जाओगे। जो किसी से कोई चीज़ उधार लेता
या कर्ज़ करता है उसके मन में दिन भर तो चिन्ता लगी रहती
और रात में वह बुरा बुरा सपना देखता है। महाजन के
ामने उसे सिर नीचा करना पड़ता है। कितने ही लोग अनि
ध्रत लाभ की आशा पर कर्ज़ कर बैठते हैं; वे यह नहीं सोचते
क यदि किसी अनिवार्य्य कारण से वह लाभ न हुआ तो वह
रण भूत की तरह उनके सिर पर इस प्रकार सवार हो जायगा
ा बहुत प्रयत्न करने पर भी जल्दी न उतरेगा।

रुपये को वृथा न फेंकोगे तो कभी द्रव्य का अभाव न होगा

क्षति अनेक प्रकार से होती है; किन्तु दो प्रकार की क्षतियों
विशेष ध्यान रखना चाहिए। प्रथम तो यह कि जो चीज़ें घर
[illegible] हैं उनमें से कोई नष्ट न होने पावे और दूसरा यह कि

जिन चीज़ों का कोई प्रयोजन नहीं वे किसी तरह घर में न आने पावें। इस विषय में चित्तवृत्ति के रोकने का अभ्यास करना आवश्यक है। "यह चीज़ मेरे बड़े ही पसन्द की है। इस चीज़ के न होने से कैसे बनेगा? यह न होने से मर्यादा न रहेगी। यह न होने से लोगों में मुँह दिखाने योग्य न रहूँगा"। "सामर्थ्य हो या न हो अमुक चीज खरीदनी ही पड़ेगी, अमुक काम में इतना खर्च करना ही पड़ेगा"। इस तरह की बातें कितनों ही के मुँह से सुनी जाती हैं। ऐसी बातें प्रायः उन्हीं के मुँह से निकलती हैं जो अपव्ययी अथवा अमितव्ययी हैं। वे अपनी अवस्था के साथ वासना का मेल रखना नहीं जानते और अपनी इच्छा के अनुसार काम न होने पर व्यग्र हो उठते हैं। अपनी अवस्था के साथ वासना का मेल न होने का कारण केवल तृष्णा की अधिकता है, जो लोग तृष्णा को जीते हुए हैं वे सभी काम अपनी योग्यता के अनुसार ही करते हैं। कितने ही लोग अपने से विशेष अवस्थावाले लोगों की देखादेखी खर्च करके नामवरी हासिल करना चाहते हैं और कर्ज़ लेकर अपना पुरुषार्थ दिखलाते हैं। थोड़ी देर की वाहवाही के लिए वे भविष्य का भयङ्कर परिणाम नहीं सोचते। कर्ज़ न चुका सकने के सबब कुछ दिन में उनके घर-द्वार, जोत-ज़मीन सब नीलाम हो जाती है, फिर उन्हें ठहरने के लिए कहीं जगह नहीं मिलती। बाल-बच्चों को एक मुट्ठी दाना तक खाने को नहीं मिलता, तब उनके मन में

जो वेदना होती है वह अनिर्वचनीय है। इसलिए अपव्ययी लोगों को संयमी होना चाहिए। जब तक कोई अपनी अवस्था के अनुसार आवश्यक ख़र्च पर ध्यान न रक्खेगा, संयमी नहीं हो सकेगा। संयमी न होने से जो दुःख रोगियों को भोगना पड़ता है वही आश्रमी मनुष्यों को भी, बल्कि उन रोगियों की अपेक्षा कभी कभी असंयमी गृहस्थ को अधिकतर कष्ट उठाना पड़ता है।

सञ्चय

यदि मनुष्य सारी उम्र परिश्रम करने में समर्थ होता, तो हमें अपव्यय आदि हानिकारी विषयों के विरुद्ध कुछ बोलने की ज़रूरत न थी और नब आमद-ख़र्च बराबर करने पर भी बुढ़ापे के समय बिताने का प्रसङ्ग न आता। क्योंकि रोज़ रोज़ की आमद से रोज़ रोज़ का अभाव दूर होता जाता। किन्तु सारी उम्र कोई काम नहीं कर सकता। युवावस्था की शक्ति बुढ़ापा आने पर नहीं रहती और अर्थोपार्जन की शक्ति बुढ़ापे में नहीं रहती। तात्पर्य यह कि बाल्यावस्था में मनुष्य जैसे [illegible] प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं वृद्धावस्था में भी वैसे ही असमर्थ हो जाते हैं। जिनके घर में बूढ़ों के रहने की ठौर, भोजन के द्वारा [illegible] होकर रहते हैं, और कोई काम करने योग्य नहीं रहते।

जङ्गली पशु न मिलने के कारण उन्हें कभी कभी कई दिनों तक भूखे रह कर समय बिताने की नौबत आई। तब उन्होंने अपने जीवन-निर्वाह के लिए नवीन मार्ग का आश्रयण किया। तब वे कुछ धान जमा कर उसके बीज बोने और खेती करने के उपयुक्त हथियारों के बनाने में लगे। धीरे धीरे उन्हें जाड़े, गरमी और वर्षा का भी बोध होने लगा और वे देह-रक्षा का उपाय ढूँढ़ने लगे। उन्हें बाघ, सिंह, साँप आदि भयङ्कर जीवों से अपनी रक्षा करने की भी बात सूझी। सुख-स्वच्छन्द से रहना पसन्द आया। भोजन, वस्त्र और घर विशेष प्रयोजनीय जान पड़ने लगे और आराम कैसे मिलेगा, इसकी खोज में लगे। किन्तु जब उन्होंने देखा कि एक ही व्यक्ति से खाद्य वस्तुओं का संग्रह, रसोई बनाना, परोसना, बाल-बच्चे की हिफ़ाजत, खेती करना, पशुओं का पालन, गाय दुहना, कपड़ा बुनना, घर बनाना, घर के प्रयोजनीय वस्तुओं का संग्रह करना और औज़ार आदि बनाना जितने काम हैं सब सम्पन्न नहीं हो सकते और इन सब कामों में कोई ऐसा भी नहीं जो छोड़ दिया जाय। तब मनुष्यों के हृदय में स्वार्थ त्याग का भाव जाग्रत हुआ। परस्पर एक दूसरे की सहायता करने लगे। आवश्यक कामों को सभी ने आपस में बांट लिया। सभी अपने अपने बल और बुद्धि के अनुसार काम करने लगे। कोई लोहा ढूँढ़ कर लाने लगा। कोई उसे आग में गला कर और पीट कर खुरपी, कुदाल और

हँसुआ तैयार करने लगा। कोई जमीन खोद कर खेत दुरुस्त करने लगा। इसी प्रकार कोई बोने, कोई उसकी हिफ़ाज़त करने, कोई काटने और कोई उसे तैयार करके सुरक्षित स्थान में रखने लगा। धीरे धीरे व्यवसाय बढ़ चला। आवश्यकतानुसार लोग एक चीज़ के बदले में दूसरी चीज़ लेने-देने लगे। इस प्रकार क्रमशः कृषि, शिल्प और बनज-व्यापार आदि की सृष्टि होकर व्यक्तिगत और जातिगत धन की उत्पत्ति हुई। जो मनुष्य असभ्य हो कर जङ्गली जानवरों की तरह जङ्गल में रह कर जीवन व्यतीत करते थे वे क्रम क्रम से अपनी उस पाशव अवस्था को अतिक्रम कर शिक्षित, शिष्ट और वास्तविक मनुष्य हो चले। इस तरह कितनी ही शताब्दियाँ बीतने पर अब मनुष्य, नीति, धर्म, ज्ञान, विज्ञान आदि अनेक गुणों के सहारे सभ्यता के ऊँचे शिखर पर आ पहुँचे हैं। आज कल की जो मनुष्यों की वृद्धि-कृत अवस्था है उसकी तुलना प्रथम काल की आद्य अवस्था से किसी प्रकार नहीं हो सकती। यदि कोई पूछे कि अवस्था का इस प्रकार परिवर्तन होने का कारण क्या? तो हम यही उत्तर देंगे कि एक मात्र स्वार्थत्याग और स्वार्थत्याग-जनित सञ्चय। आज की समस्त आहारसामग्री में से यदि कुछ न बचाया जाय तो कल के लिए कुछ नहीं रह सकता, यह स्वतःसिद्ध है। कल के लिए यदि तुम कुछ रखना चाहो तो आज तुम्हें कुछ ज़रूर त्यागना होगा। मान लो, आज मेरे हाथ दस रुपये आगये

हैं, इन रुपयों को ख़र्च करके मैं अच्छे अच्छे फल-मूल और
मिठाइयों से अपनी रसना को तृप्त कर सकता हूँ, किराये की
गाड़ी या मोटरकार पर चढ़कर इधर उधर हवाख़ोरी कर
सकता हूँ, सुगन्धित तैल और इत्र के द्वारा अपने सारे शरीर
को सुवासित कर सकता हूँ, अथवा दस पाँच मित्रों को निम-
न्त्रित कर मित्र-सम्मिलन का सुख प्राप्त कर सकता हूँ, किन्तु
कल एक रुपया भी कहीं से मिलने की सम्भावना नहीं है,
तो मुझे इसका आज ही निश्चय कर लेना चाहिए कि इन रुपयों
को किस काम में किस परिमाण से ख़र्च करना होगा। कल मुझे
हासिल हो या न हो, पर भूख लगेहीगी और भोजन भी करना
ही होगा। अतएव, या तो आहार्य्य वस्तुओं का कुछ अंश या
दस रुपयों में से कुछ रुपया मुझे ज़रूर बचा कर रखना चाहिए।
इन रुपयों से आज मैं जितना सुख उठाना चाहता हूँ उसके
कितने ही अंशों से मुझे वञ्चित होना पड़ेगा। मुझे इतना उत्तम
आहार करने से नहीं बन सकेगा। टहलने के लिए किराये
की गाड़ी न लेकर पैदल ही घूमना फिरना होगा। भोग-विलास
की वस्तुओं से परहेज़ रखना होगा। यदि मैं इतना स्वार्थत्याग
कर सकूँ तो इन दस रुपयों में से तीन चार रुपया ज़रूर ही
बचा सकूँगा। और वही कठिन समय में काम आवेंगे। यह बात
कुछ एक ही दिन के लिए नहीं कही गई है, उम्र भर इस बात
का ध्यान रखना चाहिए। भविष्य के लिए, वक़्त बे वक़्त के लिए

लोगों की गणना सभ्यसमाज में नहीं हो सकती। सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्य कुछ सञ्चय करना नहीं जानते थे, वे उस समय ऐसे असभ्य थे कि खेती तक करने का उन्हें बोध न था। ज्यों ज्यों उन्हें अभाव होने लगा त्यों त्यों उनकी आँखे खुलने लगीं और वे सञ्चयशील होने लगे। यह सभ्यता कई युगों के सञ्चय का परिणाम है। यदि मनुष्यों को सञ्चय का ज्ञान न होता तो इतने प्राचीन काल से जो उत्तरोत्तर सभ्यता और कला-कौशल का परिष्कार होता आया है वह कुछ न होता। विना सञ्चय के कभी उन्नति नहीं हो सकती। अतएव यदि तुम इसी उम्र से रोज़ रोज़ कुछ स्वार्थत्याग करना सीखोगे तो अपने जीवन में तुम्हें कभी अभाव न होगा। कभी किसी से कुछ माँगने का अवसर प्राप्त न होगा। ऋणी होकर चिन्ता के मारे जवानी में ही वृद्ध की तरह जीर्ण शीर्ण न होओगे। वरन् तुम्हारी सारी उम्र सुख स्वच्छन्द से कटेगी। जब तुम दूसरों को सुख पहुँचाने के लिए स्वार्थत्याग करना सीखोगे तब स्वयम् सञ्चय-शील बनोगे। क्योंकि सञ्चय का प्रथम साधन स्वार्थत्याग ही है। जो लोग अभी तक कुछ सञ्चय नहीं कर सके हैं, वे यदि अब से भी कुछ सञ्चय करने का अभ्यास करें तो थोड़े दिनों में कुछ धन जमा हो जाने पर सञ्चय की ओर स्वतः उनकी प्रवृत्ति बढ़ेगी। पहले अपनी अवस्था के अनुसार ज़रूरी कामों में ख़र्च करके जो कुछ बचे उसका सञ्चय करना बुद्धिमानों

ताप और विपादों में ही बोलेगा। बाल्यकाल की शिक्षावस्था से लेकर युवावस्था तक हम लोग देवनाओं के नाम पर वृथा दान देकर या और तरह से उसका अपव्यवहार करके जब बुढ़ापे में पाँव रखते हैं तब हमें धन की चिन्ता होने लगती है और तभी अपव्यय की एक एक बात हज़ार हज़ार यन्त्रणाओं को साथ लेकर सामने आ खड़ी होती है। जिसमें हम लोगों का जीवन इस प्रकार बुढ़ापे में अनुताप-दग्ध न हो उसका उपाय अभी से करना चाहिए। अन्यान्य शिक्षाओं के साथ ही साथ मितव्यय की शिक्षा भी अवश्य ग्रहण करनी चाहिए। मितव्ययी होना केवल अभ्यास से सम्बन्ध रखता है। जैसे और और गुण लोग अभ्यास के द्वारा सीखते हैं वैसे ही मितव्ययिता भी सीखनी चाहिए। जो बाल्यकाल से मितव्ययी होने का अभ्यास नहीं करते वे युवा होने पर मितव्ययी होने की इच्छा रखते हुए भी प्रायः मितव्ययी नहीं होते। कोई उपदेश सुनने, पुस्तक पढ़ने और प्रमाण संग्रह करने ही से मितव्ययी नहीं हो सकता। जैसे क़लम के बिना कोई लिख नहीं सकता वैसे ही बिना अभ्यास के कोई मितव्ययी नहीं हो सकता। मितव्ययिता के लिए अभ्यास की बड़ी आवश्यकता है। जैसे एक दिन के पढ़ने से कोई पण्डित नहीं हो सकता वैसे एक दिन के संचय से कोई मितव्ययी नहीं बन सकता। जैसे विद्या का नित्य अभ्यास करते करते विद्वत्ता प्राप्त होती है, उसी तरह नित्य प्रति मितव्यय का अभ्यास करने

से मितव्ययिता उपलब्ध होती है। पठनावस्था में बालकों को लालच बहुत बढ़ा रहता है, जिस लालच के वश कितने ही बालक कुछ प्रयोजन रहते या न रहते भी मामूली से कुछ अधिक ख़र्च किया करते हैं। वे दो एक पैसे के ख़र्च को कुछ मन में नहीं लाते, किन्तु वे यदि उन दो एक पैसे के साधारण ख़र्च को जोड़ें तो छः सात वर्ष में प्रायः ४०) या ५०) रुपये से ज़्यादा ही ख़र्च देखने में आवेगा। ये ५०) तो उनके मुफ़्त ख़र्च हुए ही, किन्तु इसके साथ ही साथ वे अमितव्ययी होने में भी अभ्यस्त हुए। मान लो यदि वे प्रति दिन के खेल-तमाशे या अन्य अनावश्यक विषय में ख़र्च न करके उन पैसों को जमा करते तो छः सात वर्ष के अभ्यास से मितव्ययी बनते और ४०) ५०) रुपये मितव्यय के फल स्वरूप उनके हाथ मौजूद होते। बाल्यकाल के उस संचित धन के द्वारा वे यदि किसी आवश्यक समय पर अपने माता-पिता को सहायता पहुँचा सकते तो उन्हें कितना आनन्द होता। जो लड़के बचपन से ही इस तरह सञ्चयशील होना सीखते हैं और अपने माता-पिता तथा अन्यान्य गुरुजनों के निकट प्रशंसित हो कर उत्तरोत्तर उत्साह पाते हैं, वे युवत्वकाल में अवश्य ही सहिष्णु, आत्मसंयमी, दूरदर्शी और धनवान् होते हैं। छात्रावस्था में अनेक प्रकार से अपव्यय होता है—यथा पुस्तकों पर चिपकाने की जल-छवि, चीनी की कड़ी मिठाई, लेमनेड, बर्फ़ और अनेक प्रकार के अस्वास्थ्यकारी मुखरोचक खाद्य, नयनों के तृप्तिकारक खिलौने,

ने के कारण कुछ अधिक ख़र्च करने के लिए बाध्य होना
ड़ता है। मान लो, एक मज़दूर को रोज़ एक सेर चावल की
ावश्यकता है, उस एक सेर चावल के लिए शायद उसे दो
ाना रोज़ ख़र्च करना पड़ता है। मंडी में पौने पांच रुपये मन
ावल बिकता है किन्तु कोई आढ़तिया एक मन से कम नहीं
ेचता। उस बेचारे मज़दूर के पास एक साथ ४॥।) नहीं,
ससे लाचार हो कर उसे छोटे दुकानदारों से ख़राब सौदा
ना पड़ता है और प्रत्येक वस्तु के लिए उसे कुछ न कुछ अधिक
म ज़रूर देना पड़ता है। इस प्रकार उसका प्रतिवर्ष कम से
म दस रुपया अधिक ख़र्च हो जाता है। वह मज़दूरी करके
गर ।) रोज़ कमाता है तो जिस तरह बन पड़े दो पैसे उसे
ज़ बचाने चाहिएं, यही दो पैसे रोज़ रोज़ जमा हो कर साल
११।=)॥ ग्यारह रुपये साढ़े छः आने होंगे। एक ही साल में
सके लिए यह अच्छी पूंजी हो गई। अब वह चाहे तो इन रुपयों
आढ़तवाले की दुकान से सौदा लेकर प्रतिवर्ष दस रुपये के
ुकसान से बच सकता है। अपव्यय से जहां छुट्टी मिली, वहां
ाय का मार्ग और संपत्ति का द्वार खुल जाता है। इस तरह
हें तो मज़दूर भी धीरे धीरे संपन्न बन सकते हैं। कितने ही
ज्ञानी पुरुषों की कल्पना क्या इन मज़दूरों की ओर गई है?
ज़दूर लोग जो कमाते हैं वही ख़र्च कर डालते हैं। उनका ख़याल
[illegible] करने की [illegible] है। [illegible]

जितना आमद उतना खर्च करके चिरदरिद्र, अभावग्रस्त और ऋणी बने रहते हैं। आमद के तुल्य खर्च करने को मितव्यय नहीं कह सकते, बल्कि आमद और खर्च बराबर होना एक प्रकार का अपव्यय है। जो लोग "बासी बचे न कुत्ता खाय" इस नीति का अनुसरण करके हमेशा तङ्गदस्त बने रहते हैं, मानो उनके सामने दारिद्र्यरूपी राक्षस सर्वदा मुँह बाये खड़ा रहता है। अपव्ययी लोगों को समय और अवस्था का दासत्व स्वीकार करना पड़ता है। वे बराबर दुर्बलता और असमर्थता दिखलाया करते हैं। वे अपनी मर्यादा खोने के साथ ही साथ दूसरों की मर्यादा की भी रक्षा नहीं कर सकते। उनके लिए आत्मनिर्भर होना तो बिलकुल असम्भव है। पुरुषोचित गुणों से और धर्म से वञ्चित होने के लिए अमितव्ययिता ही एक मात्र यथेष्ट है। अमितव्ययी दरिद्र न हो कर भी अपने को दरिद्र बनाये रहते हैं। सञ्चय और अपचय के गुण-दोष जान कर भी जो उन पर ध्यान नहीं देता, वह अपने हाथ से मानो अपने पांव में कुल्हाड़ी मारता है। तुम्हारी क्या इच्छा है? क्या तुम दरिद्र हो कर रहना पसन्द करोगे? क्या दूसरे का मुँह देख कर ही जीवन-निर्वाह करोगे? क्या सबके आगे हाथ पसार कर सिर नीचे किये रहने ही में तुम्हें सुख मिलेगा? अथवा स्वाधीन-चित्त होकर अन्न-धन से भरपूर हो कर रहना चाहते हो? दोनों ही तुम्हारी इच्छा के अधीन हैं। दोनों ही तुम्हारे अभ्यास के अधीन हैं। अपव्यय का अभ्यास

रके दरिद्र बनो, चाहे सञ्चयशील हो कर लक्ष्मी के कृपापात्र नो। जब तक तुम मितव्ययी न होओगे तब तक तुम्हें कोई श्वास के योग्य न समझेगा। कारण यह कि जो आय से अधिक य करके अभावपूर्ति करते हैं उन्हें प्रायः असत् उपाय का वलम्बन करना पड़ता है।

ऋण

"दिवसस्याष्टमे भागे शाकं पचति यो गृहे।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते"॥

महाभारत

अर्थात् एक शाम साग खाकर भी जो अनृणी है और अपने र में है वही सुखी है।

इस दरिद्राक्रान्त देश में ऋण किसे कहते हैं यह किसी को ताना न होगा। और ऋण करने से जीवन कैसा भाराक्रान्त । जाता है, यह भी बहुतों को मालूम है। जिनका आय बहुत । कम है, ऐसे लोग यथासाध्य मितव्यय करने पर भी कभी कभी ऋण लेने के लिए लाचार हो जाते हैं। कितने ही लोग देशा- ार के अनुरोध से, कितने ही लोकलज्जा के भय से, कितने ही पने भाई-बन्धुओं के निकट प्रतिष्ठा क़ायम रखने के लिए और ..तने ही केवल "वाहवाही" पाने के लिए कर्ज़ लेकर ख़र्च

करते हैं। कोई कोई अनिश्चित आमद की आशा पर ऋण लेकर खर्च करते हैं। जो लोग इस तरह ऋणजाल में फँस कर अपनी सारी ज़िन्दगी को दुःख में बिताते हैं, उनके लिए किसी धर्म का अनुष्ठान या सामाजिक उन्नतिसाधन कठिन हो जाता है। ऋणी लोगों को आनन्द के समय में भी आनन्द नहीं मिलता। उत्सव उनके निकट विषाद का रूप धारण करता है। ऋणग्रस्त लोग कन्या के विवाह और माता-पिता के श्राद्ध को एक प्रकार का संकट मानते हैं। बे हिसाब खर्च करना, कुछ जमा न करना, भविष्य के परिणाम पर ध्यान न देना, धन की योग्यता न रहते भी सुख-स्वच्छन्द और आराम से रहने की लालसा, लोगों में यश प्रशंसा पाने की उत्कट वासना, असहिष्णुता, सामाजिक कुरीति, शास्त्र की कठोर आज्ञा का पालन, और लोकलज्जा का भय ये ही सब ऋण के प्रधान कारण हैं। जो लोग ऋण लेते हैं उनका सिर महाजन के निकट झुका ही रहता है और अपने महाजन को खुश रखने के लिए उन्हें बड़ी बड़ी खुशामदें करनी पड़ती हैं और सर्वदा उसके निकट अनुगृहीत की तरह व्यवहार करना पड़ता है। ऋण चुका देने पर भी महाजन के निकट कृतज्ञता के पाश में चिरबद्ध होकर रहना पड़ता है। इसी से विशेष उपकृत मनुष्य भली भाँति अपनी कृतज्ञता प्रकाश करने के लिए उपकारी व्यक्ति से कहा करते हैं "आप के निकट मैं चिरऋणी हूँ"। अव्यवसायी लोगों का जब

समय उनकी प्रथम सन्तान कमला के व्याह की बात स्थिर हुई। उन्होंने चाहा कि लड़की के व्याह में जहाँ तक हो सके कम ख़र्च किया जाय। कितनों ही ने उन्हें सलाह दी थी कि "पहली लड़की की शादी है, इसमें दिल खोल कर ख़र्च करना चाहिए, किन्तु रमेशबाबू ने अपनी अवस्था का स्मरण कर उन लोगों की बात पर ध्यान न दिया। यद्यपि उन्होंने व्याह में विशेष कुछ आडम्बर न किया, तथापि उचित कर्तव्य की रक्षा में उनका संचित ३८४) ख़र्च होकर दो सौ रुपये महाजन से उन्हें और क़र्ज़ लेना पड़ा। इसके अलावा प्रायः एक सौ रुपये की चीज़ें बाज़ार से उधार लेकर उन्होंने दुलहे को दहेज में दीं। रमेशबाबू ने अपने पसीने की कमाई से थोड़ा थोड़ा बचा कर जो दस वर्ष में संचित कर रक्खा था उसे उन्होंने पानी की तरह बहा दिया और तीन सौ रुपये ऋण लेकर ख़र्च किये, तो भी कमला की सास और ननद ने गहनों का दोष दिया और दहेज़ की चीज़ें देख कर नाक-भौं सिकोड़ी। रमेशबाबू को अपनी हैसियत से ज़्यादा ख़र्च करने पर भी जामाता के माता-पिता और किसी किसी आत्मीय व्यक्ति के वाक्यबाण का लक्ष्य होना ही पड़ा। तीन मास तक वे महाजन को कुछ न दे सके, इतने दिन उन्हें बाज़ार की उधार चीज़ों के दाम चुकाने में लगे। चौथे मास में बड़ी कठिनता से उन्होंने एक मास का सूद महाजन को दिया। पाँचवें महीने में उन्हें देवीपूजा के उपलक्ष्य में लड़की के

ऋणी पर इतना बड़ा प्रभाव पड़ता है तब वे लोग जो केवल ब्याज लेने ही के लिए ऋण देते हैं और यही जिनकी जीविका है उन लोगों का ऋणी लोगों पर कितना बड़ा प्रभाव पड़ता होगा। अथवा अपने ऋणग्राहियों पर वे कैसा कठोर बर्ताव करते होंगे यह अनुभव के द्वारा जाना जा सकता है। ब्योहरे लोग ऋण देने के वक्त तो बड़ी मुलायमियत दिखलाते हैं, किन्तु यथासमय ब्याज न पाने पर जो सख़्ती दिखलाते हैं वह प्रायः किसी से छिपी नहीं है।

कोई एक उद्यमशील युवक अपने पिता के देहान्त होने पर ख़ुद कोशिश करके किसी सरकारी दफ़्तर में १५) मासिक वेतन पर नियुक्त हुए। उनका ब्याह पहले ही हो चुका था। मालूम होता है, गृहस्थाश्रम के झंझट में पड़कर ही वे उच्चाभिलाषी, उद्योगशील युवक अपनी विशेष उन्नति का सुयोग न पाकर नौकरी करने के लिए वाध्य हुए। या और ही कुछ नौकरी का कारण होगा। युवक का कार्य्य-कौशल और परिश्रम देख कर दफ़्तर के मुनीम ने १५) से उनका वेतन २०) कर दिया। छः वर्ष के बाद ५) और बढ़ा दिया। जब वह युवक बीस पाने लगे तभी प्रतिमास दो रुपया जमा करने लगे, जिससे छः वर्ष में उन्होंने १४४) जमा कर लिया। जब २५) पाने लगे तब ५) प्रतिमास संचय करके चार वर्ष के भीतर २४०) जमा किया। गरज़ यह कि दस वर्ष में उन्होंने ३८४) रुपया संचय किया। इसी

हालत में उन्हें श्रीर भी लोगों से कुछ कर्ज़ उधार लेना पड़ा। उनका दरमाहा क्रमशः बढ़ने लगा श्रीर उन्होंने बड़े हिसाब से घर का ख़र्च चला कर धीरे धीरे महाजन का सभी ऋण चुका दिया। किन्तु दो एक वर्ष में यह ऋण अदा न हुआ। बड़ी सावधानी से ख़र्च करने पर तब कहीं तो दस वर्ष में जाकर ऋण निःशेष हुआ। किन्तु इस अरसे में उनके श्रीर दो तीन सन्तानों ने जन्म लेकर घर का ख़र्च बढ़ा दिया। अब उनकी दूसरी लड़की के व्याहने का समय आया। उस समय वे ७५) पाते थे, पर इस आयवृद्धि के साथ ही साथ घर का ख़र्च भी बहुत बढ़ गया था। लड़कों के शिक्षा प्रदान में, आहार-व्यवहार में, कपड़े आदि बनवाने में, श्रौषधादि सेवन में श्रीर पर्व उत्सव में पहले की अपेक्षा अब ख़र्च ज़्यादा होने लगा है। ऋण परिशोध किये अभी कुछ ही दिन हुए हैं इससे कुछ जमा भी नहीं करने पाये। इसी समय दूसरी कन्या के विवाह का संकट उनके सिर सवार हुआ। "जेठी लड़की का व्याह तो थोड़े ही ख़र्च में रमेश बाबू ने सम्पन्न कर लिया था, इस लड़की के व्याह में वैसा न होने देंगे, विमला को बी० ए० पास किये हुए वर के हाथ देना होगा," रमेश बाबू को आत्मीय तथा अड़ोस पड़ोस के सभी लोगों के मुँह से जब तब यही बात सुनाई देने लगी। रमेश बाबू की हालत क्या बीत रही है, उनकी आर्थिक दशा कैसी है उस पर कोई ध्यान नहीं देता है। परन्तु रमेश बाबू

ससुराल सौग़ात भेजने का अवसर प्राप्त हुआ। यह पहला ही अवसर था। सौग़ात भेजनी ही होगी, यह सोच कर रमेशबाबू व्याकुल हो उठे। आख़िर बड़ी कठिनाई से उन्होंने एक पड़ोसी से कम व्याज पर ५०) रुपये कर्ज़ लेकर सौग़ात की चीज़ें भेजीं। किन्तु उस पर भी लड़की की ससुराल वालों ने उनकी निन्दा ही की। दो तीन महीने का व्याज अटक जाने के कारण महाजन का असल मैं सूद मिला कर २३८) हुआ। ऋण दिन दिन बढ़ता हुआ देख कर रमेशबाबू ने घर का ख़र्च कम करके ऋण चुकाने की व्यवस्था की। उनके दो वेटी और एक वेटा थे, इन सन्तानों के पीछे जो ख़र्च होता था उसे भी उन्होंने घटाया। इस प्रकार वे साधारण भोजन और वस्त्र से किसी तरह निर्वाह करके महाजन को प्रतिमास क़र्ज़ में कुछ कुछ देने लगे किन्तु पुष्ट भोजन के अभाव और दिन रात के तरद्दुद से वे ऋण का कुछ अंश चुकाते न चुकाते बीमार होकर शय्यागत हुए। लड़के जब कभी कभी बीमार हो जाया करते थे तब उसमें कुछ अधिक व्यय न होता था, इस समय ख़ुद रमेश-बाबू के रोगाक्रान्त होने के कारण रुपया पानी की तरह ख़र्च होने लगा। बीमार होने पर पहले महीने की तनख़्वाह तो उन्हें पूरी मिली, पर दूसरे महीने से वे आधा वेतन पाने लगे। चार पाँच महीने तक वे बराबर बीमार रहे, उसके बाद पूर्णरूप से न होने पर भी काम करने लगे। किन्तु बीमारी की

उत्कृष्ट विधि लिखी है, जिस विधि से श्राद्ध करने पर पितर विशेष रूप से तृप्त होते हैं और उन्हें अक्षय स्वर्गवास प्राप्त होता है, ये सभी बातें रमेश बाबू को सुनाई गईं। एक पण्डित ने गरुड़पुराण सुनाना आरम्भ कर दिया। बन्धुवर्ग कुल-मर्यादा की प्रशंसा करके विशेष रीति से श्राद्ध करने के हेतु रमेश को उत्तेजित करने लगे। किसी ने रमेश के उदार हृदय की, किसी ने उनके उच्चपद की, और किसी ने उनकी दान-शक्ति की बारी बारी से प्रशंसा की। किन्तु खेद का विषय है कि एक व्यक्ति भी उनकी आर्थिक अवस्था या उनके भविष्य परिणाम की बात मुँह पर न लाया। किसी ने इतना भी न कहा कि "अपनी अवस्था देख कर खर्च करो"। कितने ही लोगों ने तो दान-सागर* (कर्म विशेष) श्राद्ध करने की व्यवस्था दी। इस तरह की सलाह देनेवाले यदि दो चार हज़ार रुपया पहले उनके हाथ पर रख देते, तदनन्तर दानसागर श्राद्ध करने की व्यवस्था देते तो वे सच्चे मित्र का काम करते। किन्तु ऐसे मित्र तो संसार में आकाशकुसुमवत् हो रहे हैं। ऋण-भार से पीड़ित रमेश ने

* वङ्ग देश में श्राद्ध के तीन प्रभेद प्रचलित हैं। सबसे उत्कृष्ट दानसागर जिस में षोडशदान की प्रत्येक वस्तु सोलह गुना दान करना होता है। इसके नीचे वृषोत्सर्ग की विधि है। और नितान्तीय पक्ष में लोग तिलाकाञ्चन श्राद्ध करते हैं। जिसे कोई कोई षोडशी कहते हैं।

अपनी वर्तमान अवस्था को अच्छी तरह देख रहे हैं और उसके साथ ही साथ यह भी सोच रहे हैं कि कितना ख़र्च करने से समाज में हँसी न होगी और मान-मर्यादा भङ्ग न होगी। आख़िर उन्होंने कुछ आत्मीय जन और पड़ोसियों के तोषार्थ कुछ अपने मनोविनोदार्थ भावी आयवृद्धि के भरोसे ख़ूब सजधज के साथ दूसरी लड़की का व्याह किया। भविष्य का कुछ सोच न कर रुपया ख़र्च करने में कोई कसर न की। वर, लड़की के अनुकूल मिला, इससे ख़ुश हो कर रमेश अपनी अवस्था की बात भूल गये। इसीसे उन्होंने ऋण का भारी बोझ अपने सिर चढ़ा लिया। अब की बार के ऋण चुकाने में रमेश को बड़ी बड़ी दिक़्क़तें झेलनी पड़ीं। अभी महाजन का बिलकुल देना अदा भी न हुआ था इतने में उनकी माता का देहान्त हो गया। आफ़त पर आफ़त आई। बेचारे रमेश जो माथे पर हाथ देकर बैठे सो कितनी ही देर तक बैठे ही रहे। अड़ोस पड़ोस के लोगों ने रमेश को आश्वासन देकर सहानुभूति प्रकट की। सब लोग यही समझते थे कि रमेश बाबू को अपनी माता में बड़ी भक्ति थी इसीसे माता के देहान्त होने का इन्हें इतना सोच हो रहा है, किन्तु रमेश बाबू को जो सोच होता था सो रमेश का ही हृदय जानता था। इधर पुरोहित, पण्डित और जो उनके आत्मीय बन्धुगण थे, सभी ने रमेश को माता के श्राद्ध में अधिक ख़र्च करने की सलाह दी। शास्त्र में जो श्राद्ध की सबसे

खूब ही फैलता है, सारे महल्ले में उन्हीं के नाम की तूती बोलती है। वृद्ध लोग हाथ उठा कर रोज़ उन्हें आशीर्वाद देते हैं, भिक्षुक, फ़क़ीरों की जयध्वनि से उनका हृदय फूल उठता है। उनका ऐसा अंधाधुन्ध खर्च देख कर कितने ही हाँ में हाँ मिलाने वाले मित्रवर्ग भी इकट्ठा हो जाते हैं। जब उनके हाथ से रही सही सारी पूँजी निकल जाती है तब उन्हें भविष्य का भयङ्कर परिणाम सूझने लगता है। जिधर देखते हैं उधर अंधकार ही अंधकार सूझता है। एक भी अवलम्ब नज़र नहीं आता। जो मित्रगण छाया की तरह बराबर साथी बने रहते थे वे न मालूम कहाँ छिप रहे। एक भी भिखमंगा अब उनके द्वार पर दिखाई नहीं देता। जो वृद्ध रोज़ आशीर्वाद देने आते थे वे अब उनके दरवाज़े की तरफ भूल कर भी पदार्पण नहीं करते। महल्ले वाले जो पहले उनकी तारीफ़ करते थे वे अब एक स्वर से यही कहते हैं कि "अमुक व्यक्ति था तो होनहार पर बुरे लोगों की संगति में पड़ कर बरबाद होगया। देखते ही देखते उसकी हालत क्या से क्या होगई। कौन जानता था कि वह ऐसा अवारा होगा। बाप-दादे की सारी कमाई को फूँक कर वह अब एक एक दाने को तरस रहा है।" महल्ले में अब इस प्रकार उनकी बड़ाई होने लगी। जो लोग पहले उनको बैठाने के लिए अपनी आँखों ही को आसन बनाये रहते थे वे अब उनकी ओर दृक्पात भी नहीं करते। सारांश यह कि ग़रीबी की हालत में किसी को कोई

इच्छा न रहने भी कितने ही समाज के भय से, कितने ही माता के परलोकगत आत्मा की शान्ति और तृप्ति की आशा से रुपये क़र्ज़ लेकर ख़र्च किये। दो एक वर्ष के बाद उनकी पेंशन हो गई, जिससे आमदनी आधी हो गई। रमेश बाबू अपना आय कम और ऋण की वृद्धि दिन दिन अधिक होते देख मारे सोच के सूख कर काँटे हो गये। उनके शरीर का स्वास्थ्य भी धीरे धीरे बिगड़ चला। प्रौढ़ अवस्था में ही बुढ़ापे के सभी लक्षण दिखाई देने लगे। थोड़े ही दिनों में रमेशचन्द्र अपने बालकों के सिर ऋण का बोझ देकर और सम्पत्तिहीन असहाय परिवार वर्ग को दुःखसागर में डुबो कर संसार से चल दिये।

जो लोग अपनी अवस्था के अनुसार ख़र्च की व्यवस्था करना नहीं जानते अथवा व्यवस्था करके भी तदनुसार चलने का जिन्हें साहस नहीं है उनकी श्रीवृद्धि कदापि नहीं होती। ऐसा कौन मनुष्य है जो समाज में रह कर अपनी मर्यादा की रक्षा करना नहीं चाहता? किन्तु किस ढँग से चलने पर मर्यादा की रक्षा हो सकती है इसे सब नहीं जानते। यदि लोग अपनी अवस्था पर ध्यान रख कर चलना जानते तो भारतवर्ष में दरिद्रों की इतनी संख्या नहीं बढ़ती। कितने ही सामान्य अवस्था वाले अपने नाम के लिए माँ-बाप के श्राद्ध में, लड़के-लड़कियों की शादी में और कितने ही सामयिक पर्व के उत्सव में धनाढ्यों की देखादेखी ख़र्च कर के कोरे बाबाजी हो जाते हैं। कुछ दिन तो उनका यश

अच्छा समझते हैं। ऐसे कितने ही अदूरदर्शी अपव्ययी व्यक्ति धनहीन होने पर मारे ग्लानि के कुल-कलङ्किनी अबला की तरह आत्महत्या के सदृश महा पाप करने में भी कुण्ठित नहीं होते। विपत्ति के समय में जीवन धारण करने का यथेष्ट साधन और संतोष की सामग्री जीवन की अनित्यता ही है। जीवन का अन्त एक न एक दिन तो ज़रूर ही होगा उसके लिए आत्मघात करना बड़ी मूर्खता है। कितने ही लोग धनहीन होने पर उद्योग और साहस के द्वारा फिर धनवान् हो गये हैं। इसलिए हर हालत में लोगों को चाहिए कि जीवन-यात्रा के लिए कुछ न कुछ धन का संग्रह अवश्य करें। संचय करने के समय जो ला-परवाई से खर्च करते हैं और कुछ जमा नहीं करते उन्हें विपत्ति के समय रोने के सिवा और कुछ हाथ नहीं आता। मनुष्यों को जैसा जीवन प्रिय है वैसे ही जीवन को धन प्रिय है। जो लोग जीवन से प्यार रखते हैं उन्हें धन की रक्षा पर अवश्य ही ध्यान रखना चाहिए। संसार में तो प्रायः ऐसा कोई जीव नहीं है जिसे अपना जी प्यारा न हो, फिर मनुष्य तो सभी जीवों में श्रेष्ठ गिने जाते हैं। ये जीवनाभिलाषी होकर यदि धन की अवहेला करें तो समझना चाहिए कि ये अपने जीवन के वैरी हो रहे हैं। जो मनुष्य जीवन के प्यारे धन को नष्ट करेगा वह अपने जीवन को कब तक सुखी रख सकेगा। अभिप्राय यह कि जो जीवन से सम्बन्ध रखना चाहे उसे धन के साथ भी सम्बन्ध रखना नितान्त आव-

मिलेगी।" बट्टा के अलावा भी दूकानदार लोग उधारी चीज़ों पर ज़्यादा दाम चढ़ा देते हैं अर्थात् जो नक़दानगदी से दस को बेचेंगे उधार लेने वालों से उसका दाम बारह तेरह रुपये से कम न लेंगे और उस पर भी बट्टा लेंगे। एक रुपये का उधार सौदा लेने में कम से कम तुम्हें दो आना अधिक ज़रूर देना होगा। इस हिसाब से जितने रुपये का तुम उधार सौदा लोगे उसका अष्टमांश तुम्हें अपव्यय करना होगा। दस रुपये के सौदा में एक रुपया चार आना तुम्हें उधार लेने का दण्ड देना पड़ेगा। इसी तरह एक सौ रुपये के उधार सौदा के लिए तुम्हें एक सौ साढ़े बारह रुपया देना होगा। यदि तुम उधार न लेकर नक़द दाम देकर लेते तो फ़ी रुपये एक आना दस्तूरी मिनहा करके ९३॥।) में तुम्हें सौ रुपये का सौदा मिल जाता। उधार लेने के कारण सौ रुपये का सौदा लेने में १८॥।) दण्ड देना पड़ा। इतने रुपये का चावल दुर्भिक्ष के समय में भी दो मन से कम न मिलेगा। कितने ही मुनीम जब एक महीना काम करते हैं तब उन्हें १५) मिलता है, उसकी अपेक्षा भी यह अधिक हुआ। जो नौकर तुम से ४॥) मासिक पाता है उसके चार मास का दरमाहा हुआ। किन्तु जो तुम से डेढ़ रुपया माहवारी पाता है उसके लिए पूरे साल भर की तनख़्वाह हुई। भारतवर्ष के अशिक्षितों की तो कोई बात ही नहीं, कितने ही सुशिक्षित व्यक्ति भी उधार सौदा लेना ही पसन्द करते हैं। कुछ दिन के लिए मानो

श्यक है । मध्यम अवस्था वाले कितने ही धनवान् और वेतनोपजीवी समाज के प्रधान व्यक्तियों का अनुकरण करके अपनी हैसियत से ज़्यादा ख़र्च कर डालते हैं और कुछ ही दिनों में ऋणग्रस्त होकर अपना सर्वस्व खो बैठते हैं। जो लोग विशेष धनसम्पन्न व्यक्ति का अनुकरण करते हैं वे जीवन के भविष्य काल को भी अपनी दरिद्रता से बाधित कर ऋद्धि का पथ रोकते हैं। इसी देखादेखी में पड़कर कितने ही सामान्य अवस्था वाले लोग दरिद्र होकर दुख से समय बिताते हैं।

नक़द और उधार

अपव्यय के जो सब कारण पहले कहे जा चुके हैं उनके सिवा अपव्यय का एक और भी कारण है जो यहाँ कहा जाता है। "उधार कोई चीज़ लेना भी अपव्यय है।" उधार लेने से केवल अपव्यय ही नहीं होता बल्कि मान, महत्त्व भी नहीं रहने पाता। किसी दूकान से तुम कोई चीज़ क्यों न उधार लो, कुछ दाम ज़्यादा देना ही पड़ेगा। ऐसे कितने ही दूकानदार हैं जो पहले ही कह देते हैं कि "उधारी चीज़ों में फ़ी रुपये आध आना या एक आना बढ़ा देना होगा अर्थात् नक़द जो चीज़ सोलह आने को मिलेगी वह उधार लेने से साढ़े सोलह आने को, अथवा सत्रह आने को

देख पड़ती है वहाँ ख़रीदार ख़रीद सकता है। इसमें किसी दूकानदार के साथ ख़रीदार को बाध्य-बाधकता भाव नहीं रहता। ख़रीदार की ख़ुशी है, नक़द दाम देकर जिस दूकान में चाहे चीज़ ख़रीद ले। जो लोग नगद सौदा ख़रीदते हैं प्रत्येक सौदागर उनका सम्मान करते हैं। किन्तु जो लोग उधार सौदा लेते हैं उन्हें सौदा लेने के लिए ख़ास कर एक दूकानदार का पाबन्द होना पड़ता है। यदि वे किसी दूसरी दूकान में उधार लें तो पहला उधार देनेवाला उनसे बिगाड़ कर तुरन्त अपने ऋण के लिए सख़्त तकाज़ा करने लग जाता है। दूसरी बात यह कि वे उधारी चीज़ों का बहुत मोल-जोल भी नहीं कर सकते। दूकानदार ने जितना दाम कह दिया उन्हें हार कर उतने ही दाम पर सौदा लेना पड़ता है।

नक़द और उधार सौदा लेनेवाले दो व्यक्ति एक ही साथ यदि किसी दूकान में जायँ तो देखोगे दूकानदार पहले नक़द सौदा लेनेवाले के साथ प्रसन्न मुँह से बात करके उनके पसन्द लायक़ चीज़ दिखलावेगा। दर-दाम भी मुनासिब कहेगा। जब तक नक़द सौदा लेनेवाला उसकी दूकान में ठहरेगा तब तक वह उसी के साथ बात चीत करेगा और उसके प्रश्न का उत्तर देगा। किन्तु उधार लेनेवाले के दस बार पूछने पर किसी प्रश्न का जवाब एक बार अवहेला के साथ देगा। इसका कारण यह कि उधार लेनेवाले अपमानित होने पर भी दूसरी दूकान में सौदा

उन्हीं के द्वारा पूर्ण करते हैं, जो उनसे उधार सौदा लेकर उनके निकट ऋणी और बाध्य होते हैं। नक़द सौदा लेनेवाले के साथ अधिक दिनों तक कपट-कौशल नहीं चल सकता। वे जब देखते हैं कि "मुफ़ में हम ठगे जा रहे हैं" तब वे उसके यहाँ सौदा नहीं लेते। वजह यह कि नक़द सौदा लेनेवाले स्वाधीन होते हैं, उन पर दूकानदार का कोई दबाव नहीं रहता। जो उधार सौदा लेनेवाले हैं वे बारंबार ठगे जाने पर भी कुछ दृष्टि-लज्जा से और कुछ उसके देनदार होने के भय से चुपचाप अपना नुक़-सान सह लेते हैं। कितने ही उधार लेनेवाले तो यह समझ कर सन्तोष करते हैं कि "अभी दाम थोड़े ही देने हैं, जब कभी सुभीता होगा तब देंगे। दो पैसा अधिक ले ही गा तो क्या। नक़द सौदा लेने में तुरन्त दाम देना पड़ता है, दस दूकानें देखनी पड़तीं, दस दूकानदारों से दर-दाम करना पड़ना उससे तो यही अच्छा कि दो पैसा ज्यादा देकर एक ही जगह जो अच्छी बुरी चीज़ें मिलीं सो ले लीं"। ऐसा वही लोग कहा करते हैं जो आलसी, अपरिश्रमी और अपव्ययी होते हैं। उन्हें अपनी अवस्था का ज्ञान नहीं होता। उधारी चीज़ों के दाम चुकाने के समय उन्हें कितना अधिक दण्ड देना पड़ेगा और उससे उनकी कितनी हानियाँ होंगी, वे इस बात पर ध्यान नहीं देते। इससे उनकी आर्थिक अवस्था दिन दिन क्षीण होती जाती है। आख़िर उनके पास इतनी भी पूँजी नहीं बचती जिससे किसी प्रकार की

ठेने नहीं जा सकते। उस दूकानदार को नक़द सौदा वेच कर जब अवकाश मिलेगा तभी उनकी बात पर ध्यान देगा। तब तक उधार लेनेवालों को भी प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

नक़द ख़रीदने वाले स्वतन्त्र होते हैं। किसी दूकानदार का सामर्थ्य नहीं कि उनकी स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप कर सके। नक़द सौदा लेनेवाले की स्थिति सम्पत्ति की बात कोई नहीं पूछता। उन पर किसी प्रकार का सन्देह प्रकट नहीं करता। बल्कि वे जिस दूकान में जाते हैं वहाँ अपनी सच्चाई दिखा कर उन्हें उरझा रखना चाहते हैं। हरएक दूकानदार उन्हें दूसरी दूकान से कुछ सस्ते दर पर, थोड़ा मुनाफ़ा रख कर सौदा देना स्वीकार करते हैं और अपनी सुजनता दिखा कर उन्हें हस्तगत करना चाहते हैं। किन्तु उधार सौदा लेनेवाले पर दूकानदार की नज़र घूमती रहती है। वह उसकी वर्तमान अवस्था पर, उसके आमद-ख़र्च पर, उसकी स्थिति पर और उसके चाल चलन पर बराबर दृष्टि रखता है और इस बात का भी छिपे छिपे पता लगाता रहता है कि उधार लेनेवाला बिना दाम चुकाये कहीं रफ़ूचक्कर न हो जाय। दूकानदार के मन में इस बात की चिन्ता हमेशा बनी रहती है कि—"कहीं ऐसा न हो कि उधारी चीज़ का दाम डूब जाय"। जो दूकानदार अधिक मूल्य पर सौदा बेच कर विशेष लाभ उठाना चाहते हैं, अथवा अपना कपट-कौशल दिखला कर ख़रीदारों का धन हड़पना चाहते हैं, वे अपने इस मनोरथ को

तीसरा अध्याय

दरिद्रता

" दारिद्रय जनतापकारकमिद सर्वापदामास्पदम् "

"जिन्हें जितनी अधिक वस्तुओं का अभाव है वे उतने ही अधिक दरिद्र हैं।"

"प्रत्येक व्यक्ति के पास धन संचित होने से जातीय धन की वृद्धि होती है और देश की दशा सुधरती है, किन्तु व्यक्तिगत धन के ह्रास होने से देश दारिद्र्यग्रस्त हो जाता है।"

"जो अपना ज़रूरी ख़र्च करके कुछ जमा करते हैं, उन्हें कोई दरिद्र नहीं कह सकता।"

दरिद्रता का प्रधान कारण मूर्खता या शिक्षा का अभाव है। हम लोगों का यह भारत देश कृषि-प्रधान है। यहाँ सैकड़े पीछे ७० मनुष्य खेती के द्वारा जीवन-निर्वाह करते हैं। जीविका का प्रधान साधन और उसके सम्पादन की रीति जो हज़ार वर्ष पहले थी वही अब भी है। संसार की कितनी ही उन्नतिशील जाति विज्ञान और रासायनिक प्रक्रिया से दिनों दिन खेती की उपज आश्चर्य रूप से बढ़ाये चली जा रही है। भारत के कई युग बीत

तीसरा अध्याय

दरिद्रता

" दारिद्रय जनतापकारकमिदं सर्वापदामास्पदम् "

"जिन्हें जितनी अधिक वस्तुओं का अभाव है वे उतने ही अधिक दरिद्र हैं।"

"प्रत्येक व्यक्ति के पास धन संचित होने से जातीय धन की वृद्धि होती है और देश की दशा सुधरती है, किन्तु व्यक्तिगत धन के ह्रास होने से देश दारिद्र्यग्रस्त हो जाता है।"

"जो अपना ज़रूरी खर्च करके कुछ जमा करते हैं, उन्हें कोई दरिद्र नहीं कह सकता।"

दरिद्रता का प्रधान कारण मूर्खता या शिक्षा का अभाव है। हम लोगों का यह भारत देश कृषि-प्रधान है। यहाँ सैकड़े पीछे ७० मनुष्य खेती के द्वारा जीवन-निर्वाह करते हैं। जीविका का प्रधान साधन और उसके सम्पादन की रीति जो हज़ार वर्ष पहले थी वही अब भी है। संसार की कितनी ही उन्नतिशील जाति विज्ञान और रासायनिक प्रक्रिया से दिनों दिन खेती की उपज आश्चर्य रूप से बढ़ाये चली जा रही है। भारत के कई [illegible]

विपद आने पर वे अपनी रक्षा कर सकें। निष्कर्ष यह कि एक पैसा भी व्यर्थ न जाने देना चाहिए। जितना हम लोग व्यर्थ के कामों में रुपया उड़ाते हैं उतना ही यदि संचय करें तो सुख से ज़िन्दगी कट सकती है। जो लोग मितव्ययी होते हैं वे कदापि कोई चीज़ उधार नहीं लेते। जो नक़द दाम देकर अपनी आवश्यक वस्तु ख़रीदते हैं उनकी अवस्था उधार चीज़ लेनेवालों की अपेक्षा कहीं अच्छी रहती है। ख़र्च के समय इन सब बातों पर ध्यान रखने से सभी अपनी अवस्था को सुधार सकते हैं, और जो हरएक काम में अपनी अवस्था देख कर ख़र्च करते हैं उन्हें ऋद्धि प्राप्त होना कठिन नहीं है। ऋद्धि प्राप्त होने पर ऋणमात्र का परिहार हो सकता है।
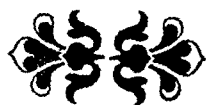
पर भीख माँगना न छोड़ेंगे। ये लोग यदि कुछ काम करके अपनी रोटी हासिल करते तो देश का बहुत कुछ उपकार होता। उन लोगों से देश का कुछ उपकार होना तो सम्भव नहीं प्रत्युत अपकार ही होता है। ये लोग व्यवसायशील प्रजाओं के उपार्जित धन का अंश ग्रहण कर पेट पालते हैं। हिसाब करके देखा गया है कि प्रत्येक भिक्षुक व्यक्ति के भरण-पोषण के लिए कम से कम तीन रुपया मासिक खर्च बैठता है। इस कारण भारतवर्ष के उपार्जनशील परिश्रमी व्यक्ति प्रतिवर्ष १८ करोड़ रुपया खर्च कर के भारतदेशीय ५२ लाख भिक्षोपजीवियों का भरण-पोषण कर रहे हैं। इन आलसी निकर्मी लोगों के पालन करने में प्रतिवर्ष अठारह करोड़ रुपये के हिसाब से पचीस वर्ष में देश का चार अरब पचास करोड़ रुपया खर्च होता है। सर अर्नेस्टकेबल ने हिसाब करके कहा है कि आज कल भारतवर्ष में सञ्चित धन की संख्या चार अरब पचास करोड़ रुपये के लगभग है*"। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रति पचीस वर्ष में भारत का समस्त संचित धन ५२ लाख भिक्षुकरूपी डकैतों के द्वारा अपहृत होता है। यह धन बीस करोड़ अशर्फ़ियों (गिनी) के बराबर है। ये

* "The hoarded wealth of India," Sir Ernest says, "has been estimated at three hundred millions sterling..." The *Pioneer*, 2nd July, 1908.

हैं, उनके पास उतनी पूँजी तो रहती नहीं जिससे कुछ तिजारत कर सकें इसलिए थोड़ी पूँजी से खेती का काम चलना साध्य समझ कर उसी का अवलम्बन करते हैं। वंगदेश के प्रथम लाट लार्ड क्लाइव ने बङ्गदेश के प्राचीन राजधानी में प्रवेश करके और वहाँ के धनवानों की संख्या देख कर कहा था कि "लंडन की अपेक्षा भी यहाँ के लोग अधिक सम्पत्तिशाली हैं।" आज कल भारत में मनुष्य-संख्या तीस करोड़ से भी कुछ अधिक ही है जिन में सैकड़े पीछे सात आदमी भी शहर में नहीं रहते। इँगलैंड में सैकड़े पीछे ६७ आदमी शहर के रहने वाले हैं। भारतवासियों के चौदह हिस्सों में तेरह हिस्से देहात में ही रह कर अपना निर्वाह करते हैं। विलायत की समस्त जन-संख्या में सैकड़े पीछे ८० आदमी शिल्पकार हैं किन्तु भारत में सैकड़े पीछे केवल १५ मनुष्य शिल्पी (कारीगर) हैं।

भारतवर्ष के बड़े बड़े शहरों में यद्यपि सम्पत्ति का प्राचुर्य दिखाई देता है तथापि कितने ही भारतवासी स्त्री-पुरुष अन्न-वस्त्र के लिए जो चारों ओर हाहाकार मचा रहे हैं, उसका कारण देशव्यापी दारिद्र्य ही है। १९०१ ईसवी की मनुष्य-गणना से ज़ाहिर हुआ था कि भारत में भीख माँगने वालों की संख्या ५२ है। वे लोग भीख माँगने के सिवा दूसरा कोई रोज़गार करते। कोई काम करके दो पैसा कमाना मानो उनके लिए ५ है। वे लोग परिश्रम से कोसों भागते हैं, वे भूखों मरेंगे

माँग करही खायँगे। उसमें तो कोई बाधा नहीं डाल सकता"। युवकों के मुँह से ऐसा नैराश्यपूर्ण वाक्य सुन कर और उन्हें इस घृणितवृत्ति से जीवन व्यतीत करने के हेतु उत्सुक होते देख कर मर्माहत होना पड़ता है।

पूर्व काल में जप, तप, पूजा, पाठ, योग, यज्ञ में समय बितानेवाले ब्रह्मपरायण धर्मात्मागणों ने जो भिक्षान्न को श्रेष्ठ मान कर उसके द्वारा जीवन धारण की व्यवस्था की थी उसकी समालोचना करना या उसके विरुद्ध कोई मत प्रकाश करना हमारा उद्देश्य नहीं है। उन लोगों ने जिस उद्देश्य से उक्त पथ का अवलम्बन किया था उसके महत्त्व सम्बन्ध में सन्देह करना भी अयुक्त है। उन लोगों ने माया-मोह से रहित ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मणों के लिए जो भिक्षान्न से जीवन-निर्वाह करना अच्छा माना था वह उस समय के लिए अवश्य ही अच्छा था। वे लोग आलसी किंवा अकर्मण्य होकर भिक्षाटन नहीं करते थे, बल्कि केवल प्राण-रक्षा के लिए भिक्षोपजीवी होकर ज्ञानोपदेश के द्वारा प्रजाओं का कल्याण करते फिरते थे। अतएव उस समय भिक्षान्न से निर्वाह करना महत्त्व का विषय समझा जाता था और देवता से भी बढ़ कर लोग भिक्षुकों का सत्कार करते थे। उस समय भारत की नीति-रीति और ही तरह की थी। शासनप्रणाली भी कुछ विलक्षण थी। किन्तु वर्तमान भारत में जो भिक्षावृत्ति की रीति जारी है, उसके परिणाम की आलोचना हम अवश्य करेंगे।

अशर्फ़ियाँ पास ही पास बिछाई जायँ तो चार हज़ार मील तक बिछाई जा सकती हैं।

स्पेन-देशवासी इतने दरिद्र क्यों हैं? जो दशा भारत की है वही स्पेन की है, वहाँ भी भीख माँगने का रिवाज जारी है। भीख माँगने में वहाँ के लोगों को लज्जा नहीं आती किन्तु कमा कर खाने में बड़ी लज्जा आती है। कोई काम करना उनके लिए लज्जा का विषय है। इसी लज्जा और आलस्य का फलस्वरूप भारत में ५२ लाख भिखारी वर्तमान हैं और स्पेन में भी। वहाँ गोयाडलकीमर नदी के किनारे के पास पास किसी समय बारह हज़ार गाँव बसे थे, अब आठ सौ भी नहीं हैं और जो हैं भी वे भिखारियों से भरे हैं। जो लोग आलसी हैं, जो किसी रोज़गार से सम्बन्ध नहीं रखते वे लोग सहसा बुरे कामों में प्रवृत्त होते हैं। निर्व्यवसायियों की दृष्टि अकसर बुरे काम की ओर दौड़ती है। इससे वे न करने योग्य काम भी कर बैठते हैं। दरिद्रव्यक्ति भिक्षावृत्ति से दूसरों का धन लूट कर दिन दिन देश का दारिद्र्य बढ़ाते हैं। वे लोग देश का केवल दारिद्र्य ही नहीं बढ़ाते बल्कि इसके साथ ही साथ वे आलसी, अदृष्टवादी और नीचाशय बन कर प्रजागणों के सामने एक अत्यन्त घृणित आदर्श का भी स्थापन करते हैं। इन भिक्षुकों के सहवास से कितने ही नवयुवकों को, जो अपने उद्योग और अध्यवसाय से स्वर्ग, मर्त्य, पाताल को एक कर सकते हैं, यह कहते सुना है कि "न होगा, तो भीख

तरह मित्रों की चिलम भर कर कारीगरी नहीं सीखी। अब भी ग्लाडस्टोन की तरह किसी ने बुढ़ापे में भी अपने हाथ से नित्य लकड़ी काटने ग्रैार कुदाल से मिट्टी खोदने के द्वारा शरीर को परिश्रमी बना रखने का मार्ग नहीं दिखलाया। बेंजुमिन फ्राङ्क्लिन की तरह कोई भारत का लाल अपने छापेख़ाने के लिए काग़ज़ ख़रीद कर ग्रैार उसे गाड़ी पर रख अपने हाथ से खींच कर नहीं लाया। किन्तु पहले किसी चक्रचूड़ामणि चक्रवर्ती राजा ने सत्य पालन के लिए जीवन का प्रशस्त भाग अत्यन्त कष्ट के साथ जङ्गल में रह कर बिताया। किसी राजकुमार ने युवावस्था में ही सांसारिक सुखों पर पदाघात करके ग्रैार राजप्रासाद का परित्याग करके संन्यासवृत्ति धारण कर ली। कोई धन-कुबेर अपना सर्वस्व दान करके रास्ते का भिखारी बन गया। इसी तरह अनेक स्वर्गीय विचित्र चरित्रों से भारत का इतिहास भरा हुआ है। भारत के ये सब आदर्श-चरित्र अन्यान्य देशों के इतिहास में बहुत कम पाये जाते हैं ग्रैार अन्य देशवासी इन चरित्रों को यथार्थ ही स्वर्गीय मानते हैं। किन्तु संसारी लोगों के लिए यही एक मात्र स्थिर आदर्श नहीं है। त्याग के साथ ही साथ भोग का भी आसन उच्च होना चाहिए। अनुराग के साथ विराग का ग्रैार कर्म के साथ विश्राम का जैसा सम्बन्ध लगा है, उसी तरह भोग के साथ त्याग का भी है। जैसा त्याग ज़रूरी है वैसा ही भोग की सामग्री प्राप्त करना भी ज़रूरी है। इन दोनों

पहले लोग क्या करते थे, क्या समझ कर उन लोगों ने किस पथ का अवलम्बन किया था, इसकी विवेचना करने का न समय है और न उसकी कोई आवश्यकता है। क्या था, इसको जाने दो। क्या हो रहा है और क्या होगा इस पर ध्यान दो। हम लोगों को इस समय वर्तमान और भविष्य की ही चिन्ता करनी चाहिए। इस देश में क्या अमीर, क्या ग़रीब सभी विपत्ति पड़ने पर भिक्षा की झोली कन्धे पर लटकावेंगे, इसमें उन्हें लज्जा न होगी; किन्तु मज़दूरी का काम जीते जी न करेंगे। भीख माँगने में लज्जा न होने और मज़दूरी करने में प्रवृत्त न होने का कारण कुछ ज़रूर है। बङ्गदेश के धनकुबेर लाला बाबू ने भिक्षावृत्ति का अवलम्बन किया था, बुद्धदेव और चैतन्यदेव आदि महापुरुषों ने भी भिक्षा का आश्रयण किया था। किन्तु आज तक इस देश के कोई राजा, महाराजा या साधारण धनवान् अथवा कोई सामाजिक प्रधान व्यक्ति विपत्ति के समय मज़दूरी करके या और ई किसी तरह का दैहिक परिश्रम करके जीवनोपाय के पथ-प्रदर्शक नहीं हुए। यद्यपि भारतवासी "गतानुगतिको लोकः०" इस वाक्य को विशेष रूप से चरितार्थ करते हैं तथापि आज कल के कितने ही नवयुवक उन्हीं आदर्शों का अनुकरण करेंगे जो उनके मतलब के होंगे। जिस आदर्श-पुरुष के प्रदर्शित नीतिपथ पर चलने से उनका और देश का मङ्गल होगा उस पर वे दृक्पात भी न करेंगे। आज तक किसी ने "पिटर दी ग्रेट" की

धनकुवेर कारनेगी या नाता का अध्यवसाय, उद्योग, मितव्ययिता और संचयशीलता का अनुकरण प्रायः कोई नहीं करता, किन्तु रथ्सचाइल्ड जिस बड़ी जोड़ी की गाड़ी पर चढ़ कर घूमते हैं, बिजली की रोशनी से जो उनका घर प्रकाशमान होता है, उसे और उनके घर की सजावट को देख कर किसके नयन नहीं लुभाते ? कितने ही ज़मींदारों की दृष्टि इन सब चीज़ों की ओर आकृष्ट होती है। जो निर्धन व्यक्ति केवल मनोरथ करके ही धनी होना चाहता है और जो अपने से विशेष धनवानों का खर्च करने में अनुकरण करता है वास्तव में वही दरिद्र है। किसी पाश्चात्य विद्वान् ने कहा है—"मनुष्यों के सुख का शत्रु दारिद्र्य है। यह स्वाधीनता का तो जरूर ही हरण करता है। कितने ही धर्म-सम्बन्धी अनुष्ठान और उचित कर्तव्य को असम्भव कर देता है और कितने ही ज़रूरी कामों के सम्पन्न होने में बाधा डालता है। बिना मितव्ययी हुए कोई धनी नहीं हो सकता। और जो मितव्ययी है वह कभी दरिद्र नहीं हो सकता। व्यक्तिगत मन्दता ही देश को दरिद्र बना डालती है। जो लोग अपनी अवस्था सुधारने का प्रयत्न नहीं करते वे देश के सच्चे शत्रु हैं। संसार में जो जाति (देशवासी) संचय करना नहीं जानती, अपव्यय से हाथ नहीं खींचती, और भविष्य के परिणाम पर ध्यान नहीं रखती उस जाति के द्वारा कभी कोई बड़ा काम सम्पन्न नहीं हो सकता। जिनके पास धन नहीं है, वे स्वभाव

की उपयोगिता आवश्यक है। हम लोगों को उपयोगिता के साधन-ज्ञान का अभाव नहीं है। पौराणिक आदर्श-पुरुषों को अनुकरणीय न समझने पर भी, वेञ्जमिन फ़ाङ्कलिन आदि उद्योगी पुरुषों के इस देश में जन्म ग्रहण न करने पर भी हम लोग एक दम अपने उपयुक्त आदर्श-व्यक्तियों से विहीन नहीं हैं। हमारे यहाँ आदर्श-पुरुषों का अभाव नहीं हैं, किन्तु हम लोगों ने आज तक उनके अनुसार जीवन-गठन करने का कभी कुछ उद्योग भी किया है? लोगों में किसने राजा राममोहनराय, महामान्य देवेन्द्रनाथ ठाकुर और महात्मा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के बताये पथ का अवलम्बन किया है? कितनी व्यक्तियों ने रामदुलाल सरकार या ताता का अनुकरण किया है? किन्तु द्रव्य न रहने पर भी गौरीसेन† का अनुकरण करते हुए, भोजन वस्त्र का उपाय न रहने पर भी उच्चवंशीय धनी लोगों की देखादेखी ख़र्च करने में अग्रसर होते हुए, यश फैलाने की इच्छा से माँ-बाप के श्राद्ध में, लड़के-लड़कियों के विवाह में या और ही तरह के किसी उत्सव में ऋण लेकर रुपया उड़ाते हुए कितने ही व्यक्ति देखे जाते हैं।

---

† बङ्गदेश में अब भी यह कहावत प्रचलित है कि—"लागे टाका देबे गौरीसेन" बङ्गाले में गौरीसेन एक बड़े दानी व्यक्ति हो गये हैं. उनके पास जो याचना करने जाता था वह निष्फल होकर नहीं लौटता था।

गोसाईं तुलसीदास और चैतन्यदेव इसके दृष्टान्त स्थल हैं। गरीबों के घर में ऐसे ऐसे कितने ही महात्मा जन्म लेकर अपने उदार चरित्र से लोगों को शिक्षा दे गये हैं। विद्यासागर, भूदेव बाबू, द्वारकानाथ, कृष्णदास, अक्षयकुमार, इनमें से एक भी धनवान् के घर में पैदा नहीं हुए थे। बेञ्जमिन फ्राङ्कलिन ने साधारण गृहस्थ के ही घर में जन्म लिया था। वे पहले चित्रकारी करके अपना निर्वाह करते थे। विङ्कलमैन के बाप जूता बना कर बेचते थे, और रात में बाप-बेटे दोनों मिलकर गलियों में गीत गाते फिरते थे और इस वृत्ति से जो कुछ पैसा मिल जाता था उसी द्रव्य से यह दरिद्र बालक विङ्कलमैन कालेज में पढ़ता था। आगे जाकर यही लड़का प्राचीन साहित्य और सूक्ष्म शिल्प कला का प्रख्यात लेखक हुआ। एन्ड्र कारनेगी, रकफेलर आदि वाणिज्य-वीर दरिद्र के घर में उत्पन्न हुए थे। मार्किन के प्रजातन्त्र के सभापति लिङ्कन दरिद्र के बेटा थे। जगद्विख्यात विज्ञानवीर फैरेडे सड़क पर पड़े हुए पाये गये थे। शायद किसी ने उन्हें पैदा होते ही रास्ते पर फेंक दिया था। गत अर्द्ध-शताब्दी (५० वर्ष) के भीतर जो लोग उच्चपदाधिकारी हुए हैं उनमें अधिक दरिद्र के ही सन्तान थे। इन बातों से यह सिद्ध हुआ कि सामान्य अवस्था के मनुष्य भी श्रेष्ठ होने की आशा कर सकते हैं और चेष्टा करने से हो भी सकते हैं। उच्च अभिलाष, उद्यम और अध्यवसाय से सभी यथासाध्य अपनी

हैं यथार्थ में वे दरिद्र नहीं हैं। दरिद्र असल में वे व्यक्ति हैं जो एक पैसा भी जमा नहीं करते और ऋण लेकर घर का ख़र्च चलाते हैं। जो लोग ऐसे अमितव्ययी और ऋण-लोलुप हैं वे अपने चरित्र को भी ठीक नहीं रख सकते। अतएव इस श्रेणी के जो दरिद्र हैं वे अवश्य निन्दास्पद हैं। यदि कलङ्क की कोई बात है तो उन्हीं लोगों के लिए है। कारण यह कि धन का अभाव केवल मनुष्यता का अपहरण करता है किन्तु दारिद्र्य मनुष्य-समाज में अनेकानेक दोषों को उत्पन्न करता है। दुश्चरित्र ज़मींदारों की अपेक्षा वे सामान्य अवस्थावाले गृहस्थ हज़ार दर्जे अच्छे, श्रद्धास्पद और प्रशंसा के पात्र हैं जो सच्चरित्र और आत्मनिर्भरशील हैं। ब्रह्मनिष्ठ सच्चरित्र गृहस्थ का कुशासन राज-सिंहासन से पवित्र है। सिंहासन पर बैठ कर सम्भव है राजा कुछ अन्याय भी कर बैठें किन्तु उस कुशासन के बैठनेवाले से प्रायः कोई अन्याय होना सम्भव नहीं। जिन के पास धन नहीं है वे प्रायः हृदय के उदार और उच्चाशय होते हैं, किन्तु जिन के पास धन है वे अधिकतया कर्तव्य-विमुख होते हैं और साधारण स्वार्थत्याग करने में असमर्थता दिखलाते हैं। धन के साथ यदि स्वार्थत्याग और कर्तव्य-बुद्धि का योग होता तो देश का बहुत कुछ दारिद्र्य दूर होता। धनाढ्य व्यक्तियों के महलों की अपेक्षा प्रायः ग़रीब गृहस्थों के घर में ही प्रतिभाशाली महात्माओं का जन्म होता है। ईसा, नानक,

धन को थोड़े ही दिनों में नष्ट करके दरिद्र बन जाते हैं। करोड़पति की सन्तान हो कर भी वे देखते ही देखते धनहीन हो कर भिखारी बन जाते हैं। कृपण धनवान् के सन्तानगण बहुधा ऋणग्रस्त होकर अन्त में मुफलिसी का जामा पहनते हैं। इसलिए कृपण होना बड़े ही पाप का फल है, कृपण को जीते जी सुख नहीं। और मृत्यु के बाद उनके धन से उनकी सन्तानों को भी सुख नहीं; कारण यह कि अयोग्य होने के कारण उनकी सन्तान धन से उपयुक्त सुख भोगना नहीं जानती। इस कारण वह यथार्थ सुख से वञ्चित हो कर अपव्यय के द्वारा सर्वस्वान्त कर डालती है।

अतिदान

"अतिदानैर्बलिर्बद्धो ह्यति सर्वत्र वर्जयेत्"

"स्काटलैंड में एक कहावत है कि पितामह प्राणपण से परिश्रम कर के धन जमा कर जाता है, बाप अच्छी अच्छी इमारतें बनाता है, बेटा सारी सम्पत्ति को नष्ट कर चोरी कर के पेट भरता है।"

"जो लोग दिन में कपूर की बत्ती जला कर आनन्द मनाते हैं, किसी दिन उनके घर अँधेरी रात में एक चिराग़ भी जलते न देखोगे।" सत्यानन्दक।

धन को थोड़े ही दिनों में नष्ट करके दरिद्र बन जाते हैं। करोड़पति की सन्तान हो कर भी वे देखते ही देखते धनहीन हो कर भिखारी बन जाते हैं। कृपण धनवान् के सन्तानगण बहुधा ऋणग्रस्त होकर अन्त में मुफलिसी का जामा पहनते हैं। इसलिए कृपण होना बड़े ही पाप का फल है, कृपण को जीते जी सुख नहीं। और मृत्यु के बाद उनके धन से उनकी सन्तानों को भी सुख नहीं; कारण यह कि अयोग्य होने के कारण उनकी सन्तान धन से उपयुक्त सुख भोगना नहीं जानती। इस कारण वह यथार्थ सुख से वञ्चित हो कर अपव्यय के द्वारा सर्वस्वान्त कर डालती है।

अतिदान

"अतिदानैर्बलिर्बद्धो ह्यति सर्वत्र वर्जयेत्"

"स्काटलैंड में एक कहावत है कि पितामह प्राणपण से परिश्रम कर के धन जमा कर जाता है, बाप अच्छी अच्छी इमारतें बनाता है, बेटा सारी सम्पत्ति को नष्ट कर चोरी कर के पेट भरता है।"

"जो लोग दिन में कपूर की बत्ती जला कर मनाते हैं, किसी दिन उनके घर अँधेरी रात में एक बलते न देखोगे।" सद्भावशतक।

है। दैवयोग से इसी अवसर में यदि कहीं कृपण की मृत्यु हो
गई तो उसका वह अतुल ऐश्वर्य्य उन अशिक्षित, अदूरदर्शी,
पशुगणों के हाथ में पड़ता है। जो एक दिन अपने बाप की
कृपणता के कारण सभी सुख और भोग-विलास की वस्तुओं से
रहित थे, जिन्हें किसी समय सुस्वादु भोजन दुर्लभ था, वे एका-
एक प्रचुर धन पाकर और स्वतन्त्र हो कर निरङ्कुश मदमत्त
हाथी की तरह उद्दण्ड हो उठेंगे इसमें आश्चर्य ही क्या? उन्होंने
पिता की तरह एक एक कौड़ी से करोड़ रुपया जमा करने की
शिक्षा तो पाई नहीं, वे युवा काल की अपूर्ण वासनाओं के साथ
एकाएक प्रचुर धन के अधिकारी बन बैठे हैं। वे अब दरिद्र
की तरह रहना कब पसन्द करेंगे? वे अब अमीरी करने में कब
चूकेंगे। वे अमीरों का अनुकरण करेंहीगे। बल्कि वे कितने ही
अमीरों से अधिक ख़र्च कर अपनी अमीरी से उन्हें नीचा
दिखलाने का प्रयत्न करेंगे। बाप की जीवित दशा में वे किस
कष्ट से समय बिताते थे यह अब उन्हें एक भी स्मरण नहीं, उस
पर भी कितने ही महामूर्ख दुराचारी व्यक्तियों का सङ्ग पाकर वे
और भी अपव्यय की ओर झुक पड़ते हैं। जो अपने पसीने की
कमाई नहीं है उसे खुले हाथ ख़र्च करने में कोई कुण्ठित क्यों
होगा? खेद का विषय है कि कृपण का सञ्चित धन अच्छे
कामों में न लग कर अकसर बुरे कामों में ही भस्मसात् होते हैं।
शिक्षा के अभाव से कृपण की सन्तान अत्यन्त कष्ट से उपार्जित

हैं उनके लिए भी उपहास के व्याज से लोग इसी नाम का व्यवहार करते हैं। यदि कोई कहे कि अमुक व्यक्ति दाता कर्ण है तो समझना चाहिए कि वह व्यक्ति धन को लुटा रहा है। आज कल के दाता कर्णों में प्रायः कोई ऐसा न मिलेगा जिसके धन, जन, मान, महत्त्व और प्राणों पर संकट न आपड़ा हो।

प्रायः ऐसा सुनने में आता है कि "अमुक व्यक्ति साल में हजारों रुपया दान करता था, वैसा दयालु और दानी अब दूसरा कोई दिखाई नहीं देता। वह आदमी क्या था मानो साक्षात् दाता कर्ण था। रास्ते से लोगों को बुला बुला कर अन्न, वस्त्र देता था, लड़की की शादी में उसने जो कुछ खर्च किया, वह अब दूसरा कोई क्या करेगा? मा-बाप के श्राद्ध में तो उसने कुछ उठा न रक्खा। नाच-तमाशे में उसने जितना लुटाया उतना अब कोई जमा भी तो करले। किन्तु हाय विधाता की गति बड़ी विचित्र है। उसकी माया को कोई क्या समझेगा। उसी दाता कर्ण की स्त्री और बेटे आज भूखों मर रहे हैं। जो किसी समय सदाव्रत देता था उसका परिवार आज एक एक दाने को तरस रहा है। जो एक दिन रुपया को रुपया नहीं समझते थे, दोनों हाथों से रुपया लुटाते थे, जब उनकी मृत्यु हुई तब देखा गया उनके घर में एक फूटी कौड़ी नदारद। यहां तक कि वे अपने दाहादि कर्म के लिए भी कुछ रख न गये। किसी न किसी तरह उनका श्राद्ध-कर्म हुआ। स्त्रियों के जितने भूषण थे,

सन् १८७० ई० में इंगलैंड के चतुर्थ एडवर्ड के राजत्वकाल में जार्ज नेभिल ने प्रधान धर्माध्यक्ष के पद पर प्रतिष्ठित होने के समय एक भोज दिया था। इस महोत्सव में उन्होंने प्रधान प्रधान धर्मयाजक (पादरी) और देश के प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्तियों को निमन्त्रित किया था। इस भोज में इतना अधिक द्रव्य खर्च हुआ था जो आज भी इँगलैंड में लोगों को उपमा की जगह इसका स्मरण हो जाता है। भोज का चिट्ठा जब दाखिल हुआ तब देखा गया कि १०५ मन मैदा, ९८५० मन मद्य (एल), २८०८ मन मदिरा, एक पीपा (९॥ऽ मन) मसालादार मदिरा, ८० बैल, ६ जंगली साँड़, ३०० बछड़े, ३०० सुअर, १००८ भेंड़ें, ३०० सुअर के बच्चे, ४०० हिरन, ३ हज़ार राजहंस, ३ हजार मोटे ताज़े मुरगे, २ हज़ार मुरगी, १०० मोरपक्षी, २०० चकवा, ४ हज़ार कबूतर, ८ हज़ार खरहा, दो सौ बकरी के बच्चे, ५०० तीतर २ हज़ार काठफोड़ा पक्षी, चार सौ ग्रोभर (, र त्रिटखे पक्षी, एक हज़ार बक, चार हज़ार [illegible] ब्य, १०० बटेर, २०० फेजंट पक्षी, २०० रीस प[illegible] सूखे मृग-मांस के पकौड़े, चार हज़ार ठंडे पकौड़े, १[illegible] भिन्न भिन्न प्रकार के पकान्न, एक हज़ार से कुछ अधि[illegible] मछलियाँ, और भी कितने ही प्रकार के मुरब्बे, बिसकुट आदि की व्यवस्था हुई थी। इस भोज में जार्ज नेभिलके भाई अर्ल औव वारविक भंडारी थे, अर्ल औव बेडफोर्ड कोषाध्यक्ष थे और लार्ड हेष्टिंगस हिसाब जाँचने वालों

दिनों में सब बिक गये। माल असबाब जो कुछ था सब समाप्त होगया। ऐसा क्यों हुआ? पहले जो कुछ यह कहा गया है कि वे जीवित समय में दोनों हाथों से रुपया लुटाते थे उसी का यह परिणाम है। उन्होंने जीवित अवस्था में जो धन कमाया था वह भविष्य का कुछ सोच न कर परिवारवर्ग के लिए कुछ धरोहर न रख कर सब ख़र्च कर डाला। उनकी इस अपरिणाम-दर्शिता के कारण और "जितनी आमद उतना ख़र्च" इसी अनीति पर चलने और ऋण लेकर अपव्यय करने के कारण उन दाता कर्ण के स्त्री, पुत्र, परिवार आज भिखारी बने फिरते हैं। यदि वे खुले हाथ ख़र्च कर दाता कर्ण न बनते, ख़र्च से हाथ खींच कर कुछ जमा करते, मितव्ययी होकर कृपण कहलाये जाने का भय न रखते तो आज उनकी विधवा स्त्री, बूढ़ी माँ और मक्खन के पुतले से छोटे छोटे बालक दीन, भिखारी क्यों बनते? आज उनके ये प्रिय परिवारवर्ग अन्न-वस्त्र के कष्ट से व्याकुल होकर यमयातना क्यों सहते? अधिक ख़र्च करने का अन्त में यही परिणाम होता है। जो लोग एक दिन आमद से अधिक ख़र्च करके या अपने आय से कुछ संचय न करके मौज उड़ाते हैं उनके परिवारवर्ग की अन्त में यही दशा होती है। लोगों का यह कहना बहुत ठीक है कि जो एक दिन क़र्ज़ करके मिठाई खाते हैं उन्हें किसी दिन भर पेट खाने को सत्तू तक नहीं मि[illegible]लता।

वैराती दवाख़ाने में प्राणत्याग किया। इनकी शोचनीय अवस्था पर किसी कवि ने कारुण्यपूर्ण कविता की थी। उस कविता का भाव यही था कि बङ्ग के गौरवस्वरूप अद्वितीय कवि मधुसूदन-दत्त ने भिखारी के भेष में स्वर्गयात्रा की।

रूस के धनकुबेर डारविस्स के बाद उनके उत्तराधिकारी पल डारविस्स ने १८८७ ईसवी में पिता के गुरक्षित १२ करोड़ रूब्ल (रुपया) का आधिपत्य प्राप्त किया। किन्तु अपनी फ़िज़ूल-ख़र्ची और विलास-परायणता के कारण वे थोड़े ही दिनों में सारे धन को उड़ा कर छोटे भाइयों और माता से सहायता के भिक्षुक बने। पेरिस के एक धनकुबेर अपने बेटे को चार करोड़ फ़्राङ्क (रुपया) दे गये। बेटा ऐसा अपव्ययी था कि उस धन को मकान बनवाने में और भोग-विलास में ख़र्च कर के वह दो ही वर्ष में धनहीन बन गया। जब उसके पास कुछ न रहा तब राजमार्ग में झाड़ूबरदार का काम कर के जीवन बिताने लगा! वंश-गौरव, स्वरूप, विद्या, विनय आदि जितने गुण हैं वे किसी तरह उसकी रक्षा नहीं कर सकते जो मितव्ययरूपी कवच को धारण नहीं करता। अमितव्ययिता एक ऐसा भारी दोष है जो समस्त गुणों को नाश कर के बड़े बड़े चक्रवर्ती महाराजा को भी दरिद्र बना डालता है। ऋद्धि का गुप्त मन्त्र मितव्यय है। ऋद्धि की सिद्धि के लिए इस गुप्त मन्त्र की उपासना ज़रूर करनी चाहिए।

खुशामदियों को या अपने अपेक्षितों ही को दान देना, आवश्यकता न रहते भी किसी को कुछ दे डालना, यश लूटने के लिए दान करना, अनिच्छा से या क्रोधपूर्वक दान करना, अथवा डर से दान करना धर्ममूलक नहीं है। जिस दान में स्वार्थ का भाग घुसा है वह दान निष्कलङ्क नहीं कहला सकता। जिस दान से आलसियों को सहारा मिले, जिस दान के द्वारा अकर्मण्य लोगों को देश की दरिद्रता बढ़ाने का अवसर मिले, ऐसा दान न करना ही अच्छा है। संसार में कितने ही दानवीर हो गये हैं और अब भी हैं जो दो श्रेणियों में विभक्त हैं। गौरीसेन प्रभृति एक श्रेणी में, और दूसरी श्रेणी में दयावतार विद्यासागर आदि महापुरुष हैं। "कोई करै देन, चुकावैं गौरीसेन †" यह प्रवाद जो बहुत दिनों से बङ्गदेश में प्रचलित है, उसका अर्थ यही कि गौरीसेन ऐसे धनाढ्य और दानी थे कि जो उनके यहाँ याचना करने जाता था उसके लिए वे अपने भाण्डार का द्वार खोल देते थे। उनके यहाँ से कोई याचक विफलमनोरथ होकर नहीं जाने पाता था। इससे हुआ क्या? जो लोग आलसी, अपरिश्रमी और कृपण थे अधिकतया वही लोग उनकी वदान्यता से लाभ उठाने लगे। यह कहावत "कोई करे देन, देंगे गौरीसेन" उन्हीं निकम्मे लोगों की बनाई हुई है। गौरीसेन का यह दान अविचार का ही

† बँगला में इस प्रकार कहते हैं ' लागे टाका देवे गौरीसेन"।

उनका कष्ट निवारण किया। जो लोग समाज से बहिष्कृत थे उन लोगों के साथ सहानुभूति प्रकट की. इस प्रकार वे दान-धर्म की सार्थकता करके दयावनार के नाम से प्रसिद्ध होकर आबालवृद्ध-वनिताओं के हृदय में आज भी सम्मान-भाजन बन कर पूजित हो रहे हैं।

दयावनार विद्यासागर के सैकड़ों प्रकार के दान और दया की बातें लोक में प्रसिद्ध हैं। उपयुक्त पात्र पाने पर उनकी दया जाति, मज़हब या वर्ण विशेष की तरफ़ नहीं उलझती थी. वे जिसे उपकार का पात्र समझते थे उसका यथासाध्य अवश्य ही उपकार करते थे। मैं उनके उपकार का एक उदाहरण † यहाँ उद्धृत करना आवश्यक समझता हूँ। विद्यासागर महाशय ने एक दिन अपने एक विश्वासपात्र कर्मचारी से कहा—"देखो बाबू, कोलूटोला स्ट्रीट के अमुक नम्बर के मकान में अमुक नाम के एक व्यक्ति रहते हैं, जो मद्रास के रहनेवाले हैं। मुझे मालूम हुआ है वे द्रव्य के अभाव से अत्यन्त कष्ट पा रहे हैं, इसलिए तुम वहाँ पर जाकर उनकी सच्ची ख़बर ले आओ। विद्यासागर महाशय की आज्ञा से उस कर्मचारी ने वहां जाकर पहले उस मकान के मालिक से भेंट की। उनके निकट उसने उक्त मद्रासवासी का

---

† स्वर्गीय रजनीकान्त गुप्त महाशय प्रणीत प्रतिमा से उद्धृत और "दैनिक" पत्र में प्रकाशित आख्यान से गृहीत।

दान कहा जायगा। उनके इस प्रकार अतिदान से देश का कुछ विशेष उपकार न होकर अपकार ही हुआ। जहाँ अतिचार दान का प्रसङ्ग आता है वहाँ उनका नाम पहले ही लोगों को स्मरण हो आता है। [illegible] बड़े दानी थे यह प्रायः सब जानते हैं किन्तु उनका घर कहाँ था, किस वंश में उन्होंने जन्म लिया था यह सब लोग नहीं जानते। जो लोग उचित दान करके अपनी मर्यादा की रक्षा नहीं करते उनका नाम संसार में प्रतिष्ठापूर्वक चिरस्थायी नहीं होता। अब दूसरी श्रेणी के दाता की ओर दृष्टि दो। विद्यासागर महाशय जो दया के अवतार कहलाते हैं, जिन्हें सभी लोग प्रातःस्मरणीय समझते हैं उन्होंने कितने करोड़ रुपया दान किया था? उन्होंने कौन सा अपना राज-भण्डार लुटाया था? उन्होंने न तो करोड़ रुपया ही दान किया था और न राज्य ही उत्सर्ग करके किसी को दिया था। तो तुम्हीं कहो, वे दया के अवतार कैसे हुए? कारण यह कि उन्होंने ऐसे अमूल्य पदार्थ दान किये, जिनका फल देश के सभी स्त्री-पुरुष भोग रहे हैं और भोगेंगे। कदाचित् दो एक धूर्त ने उनके उदार हृदय और दया का सुयोग पाकर भले ही उन्हें ठग लिया हो किन्तु उन्होंने जब दान दिया तब उपयुक्त पात्रों को ही दान दिया। अनाथ, असहाय व्यक्तियों को आश्रय, रोगियों को औषध और अज्ञानियों को ज्ञानोपदेश दिया। उन्होंने सबके लिए शिक्षा का द्वार खोल दिया। जो लोग यथार्थ में अन्न, वस्त्र के अभाव से कष्ट पाते थे

हाल पूछा"। उन्होंने कहा, "हाँ वे मेरे इस मकान के नीचे के खण्ड में अपने स्त्री-पुत्र के साथ हैं। छः महीने का भाड़ा ३०) उनके यहाँ अटका है। द्रव्य के अभाव से लाचार होकर अब तक वे मकान का किराया नहीं चुका सके। मैं भाड़े के लिए बार बार तकाज़ा करता हूं और चाहता हूं कि भाड़ा मिल जाने पर उन्हें यहाँ से हटा दूँ पर क्या करूँ उनकी हालत देख कर दया आती है। दो तीन दिन से वे बेचारे बाल-बच्चों के साथ भूखे हैं"।

गृहस्वामी के मुँह से यह बात सुन कर वह उस मद्रास-वासी के पास गया और देखा कि वे एक छोटी सी कोठरी में पाँच पुत्री और दो अल्पवयस्क पुत्रों के साथ चटाई पर बैठे हैं। पुत्र और कन्यागणों का चेहरा अनाहार के कारण रोगी सा दुर्बल और उदास दीखता था। वह कर्मचारी इस दुर्दशापन्न मद्रासवासी के साथ बात चीत करने लगा। मद्रासवासी ने कहा—"मैंने इस कलकत्ते से प्रधान शहर में कितने ही बड़े लोगों के पास जाकर अपनी विपत्ति की बातें कहीं, पर किसी माई के लाल ने मेरी दुरवस्था पर दया करके एक कानी कौड़ी देकर भी मेरी सहायता नहीं की। यों ही घूमता फिरता मैं एक बाबू के पास याचना करने गया, उन्होंने कुछ भिक्षा तो न दी पर एक पोष्टकार्ड पर कुछ लिख कर मेरे हाथ में दिया और कहा कि इस शहर में एक परम दयालु विद्यासागर महाशय है

अवश्य धन्यवाद के पात्र बनेंगे। यहां एक सत्य घटना की बात लिखी जाती है—*बङ्गाले के पश्चिम प्रान्तवर्ती किसी गांव की* एक बङ्गमहिला अपने पाठाविमुख बालक की ताड़ना करने लगी। उसकी बूढ़ी सास ने झट आकर उसका हाथ पकड़ लिया और गरज कर बोली—"देखती हूँ, तू इस लड़के को आज चीर फाड़ कर मार ही डालेगी। खबरदार, आज से इस लड़के को कुछ कहा तो मैं अपनी जान ले लूँगी, मेरे रहते तू इसकी सज़ा करनेवाली कौन? मेरे भाग्य से मेरा बच्चा जिये, न कुछ लिखे पढ़ेगा तो क्या होगा? काशी का क्षेत्र बना है।" न मालूम आगे जाकर उस बालक की क्या दशा हुई? किसी किसी के मुँह से यह भी कहते सुना है कि "संसार में बड़े बड़े दानी हैं, लड़का मूर्ख हो कर भी जी जाय, न होगा मांग कर ही खायगा।" अविचारी दाता के भरोसे और जहां तहां के अन्न-सत्र के भरोसे लोगों की इस तरह की धारणा बड़ी ही शोकजनक और भय उपजानेवाली है।

जो संस्कृत-साहित्य ज्ञान का भाण्डार था, आर्यजाति के गौरव का अनुपम धन था, उस अमृतमयी देव भाषा की चर्चा और शिक्षा की अवनति होते देख कर विद्वद्वर भूदेवचन्द्र मुखोपाध्याय मर्माहत हुए थे। वे एक दरिद्र विद्वान् के पुत्र थे। उन्होंने बड़े बड़े कष्ट से लिखना पढ़ना सीखा था। वे दारिद्र्य-यातना से अभिभूत होने पर भी निरुत्साह न हो कर अध्यवसाय

अपात्रों को दान देना अधर्म है। जो दान के उपयुक्त पात्र हैं उन्हीं को दान देना चाहिए। श्रीकृष्ण भगवान् ने अर्जुन से क्या ही अच्छा कहा है—"दरिद्रान् भर कौन्तेय ! मा प्रयच्छेश्वरे धनम्। व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः।" जो अल्प उपार्जन से अपने समस्त पोष्यवर्ग की रक्षा करने में अक्षम हैं, अथवा जो उपार्जन करने में असमर्थ हैं यथा, अति वृद्ध, अन्धे, लूले, लँगड़े और चिररुग्ण मनुष्य, जिन्हें भोजन, वस्त्र का कोई उपाय नहीं, ऐसे ही व्यक्ति दान के पात्र हैं। हमारे देश में ऐसे कितने ही महात्मा हैं जो केवल यश के लिए दानसागर श्राद्ध करते हैं। कितनी जगह उन दानी महात्माओं की ओर से अन्न का सदावर्त दिया जाता है। इन कामों की सहसा कोई बुराई नहीं कर सकता क्योंकि इसके द्वारा अनेक दानपात्रों को सहायता मिलती है किन्तु इसके साथ ही साथ कितने ही कार्यक्षम आलसी बनकर केवल दान द्रव्य पर जीवन निर्भर करते हैं, कितने ही धूर्तवञ्चक बाबाजी बन कर पैसा बटोरते हैं, और कितने ही अपात्र प्रतिपालित होते हैं इसकी संख्या नहीं। जो धनी दातृत्व गुण से विभूषित हैं, वे यदि रोगग्रस्त, निराश्रय, निःसहाय, विधवा और अनाथ बालक-बालिकाओं की रक्षा का पूरा प्रबन्ध करदें, जिन बालकों को पढ़ने के लिए खर्च का उपाय नहीं है उन्हें खर्च देकर यदि पढ़ने का सुबीता करदें तो वे सात्त्विक दान के [illegible] होंगे और देश की श्रीवृद्धि के साधक बन कर

तब तक उनका ध्यान बराबर देशोपकारी कामों की ओर बना रहा। उन्होंने मृत्यु के पहले आंतरिंग दान एक लाख रुपया गवर्नमेंट के हाथ यह कह कर सौंप दिया कि इस रुपये के ब्याज से एक रुपया माहवारी उन दरिद्रों को दिया जाय जो उपार्जन करने में असमर्थ हों। दरिद्र किसी जाति के क्यों न हों।" इस प्रकार अनेकानेक उचित दान देकर भी वे अपने सन्तानों के लिए एक लाख बीस हज़ार रुपया सालाना आमदनी की ज़मींदारी और नक़द दस लाख रुपये छोड़ गये हैं*।

सिंहलद्वीप के निवासी महता मैसा एक दरिद्र के घर में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने अपनी सच्चरित्रता, अध्यवसाय और उद्योग के बल से अतुल ऐश्वर्य का आधिपत्य प्राप्त किया था किन्तु उनका वह अपने पसीने का कमाया हुआ सारा धन न परिवार-वर्ग के सुख-सम्भोग में खर्च हुआ और न उन लोगों के लिए सञ्चित रूप में ही रक्खा गया। वे अपने धन का अधिकांश दान कर गये हैं, किन्तु उन्होंने दोनों हाथों से सर्वस्व लुटा कर, दाता कर्ण का यश-लाभ करने की कभी चेष्टा न की। उनके सम्पूर्ण दानों की तालिका देना तो असम्भव है तो भी उनके कई एक दानों का उल्लेख नीचे किया जाता है।

---

* हितवादी १३०९ साल पहला आश्विन।

और सहिष्णुता के साथ विद्याध्ययन कर के अँगरेज़ी और संस्कृत के अच्छे विद्वान् बन गये। वे ब्राह्मणत्व, हिन्दुधर्म, आयुर्वेदीय चिकित्सा, ज्ञान, नीति और धर्मशास्त्र के पक्षपाती और प्रचारक थे। वे इन सब विषयों के पुनरुद्धार और प्रचार के लिए अपने उपार्जित धन से एक लाख साठ हज़ार रुपया दान दे गये हैं। एक दरिद्र सन्तान राजकर्मचारी भारतवासी के हाथ से देश-सेवा के लिए इतना धन दान होना क्या सामान्य बात है? भारत के लिए इस दान को अतुलनीय कहें तो अत्युक्ति न होगी।

स्वर्गीय मोहिनीमोहन राय हाईकोर्ट के एक सुप्रसिद्ध वकील थे। उन्होंने वकालत कर के कई लाख रुपये कमाये। संसार में ऐसे कितने ही कृपण हैं जिनके पास असंख्य धन है, किन्तु वह मिट्टी के भीतर ही छिपा रहता है, किसी के उपकार में नहीं आता। विचारवान् पुरुषों के हाथ में द्रव्य आने पर उसका उचित उपयोग होता है। वे उसे अच्छे कामों में खर्च कर देश का उपकार करते हैं। मोहिनी बाबू सत्पात्र को दान देकर अपने उपार्जित धन को सार्थक कर गये हैं। उन्होंने साउथ सुबर्बन स्कूल का मकान बनवाने के लिए, ढाके के सारस्वत-समाज में, सरकारी डाक्टरों की वैज्ञानिक सभा में और अलीपुर की पशुशाला आदि अनेक देशोपकारी कामों में कई हज़ार रुपये दे [illegible] । वे छोटे लाट और बड़े लाट साहब की सभा के मेम्बर थे। [illegible] की उम्र में उनका देहान्त हुआ। जब तक वे जीते रहे

ऐसे ही और भी अनेक दानशील व्यक्तियों ने विचारपूर्वक दान करके देशोपकार किया है। जिस दान से देश का या समाज का कुछ उपकार न हुआ वह दान किस काम का। भारतदेश के धनाढ्यगण यदि दाता कर्ण न बन कर विचारपूर्वक दान करते तो बहुत कुछ देश की उन्नति होती।

अपनी उन्नति की चेष्टा करना नहीं जानता। उसे आलसी हो कर पड़ा रहना ही अच्छा जान पड़ता है। सन्तानवालों को उतना ही धन देना चाहिए जितना उनकी पूँजी के लिए उपयुक्त हो जिसके द्वारा वे अपनी जीविका प्राप्त करने में उद्यत हो सकें। और धन जो बचे उसे देश के सर्व साधारण के उपकार में लगा देना चाहिए। नोबल के जितने आत्मीय लोग थे सभी सम्पन्न थे अतएव उन्होंने किसी को कुछ न देकर अपना समस्त धन देशोन्नति के लिए दे डाला। उनकी सम्पत्ति के सालाना छ लाख आय से प्रतिवर्ष पाँच व्यक्ति को एक लाख बीस हजार रुपया पुरस्कार देने की व्यवस्था की गई। तदनुसार (१) पदार्थ-विज्ञान, (२) रसायन-विज्ञान, (३) चिकित्सा-विज्ञान, (४) इन विषयों के सर्वश्रेष्ठ आविष्कर्ता को, साहित्य के उन्नतिकारक उच्चकोटि के काव्य-रचयिता को, और (५) विभिन्न जातियों में भ्रातृभाव और शान्ति रक्षा स्थापित करनेवालों में सबकी अपेक्षा जो विशेष काम कर दिखावे, उसको यह पुरस्कार दिया जाता है। नोब्ल ने जो कहा उसे कर दिखाया। इसी तरह जमशेदजी, नसरवाँजी, ताता, एन्ड्रू कार्नेगी आदि महा पुरुषों ने जो अतुल दान किया है वह सात्त्विक दान का आदर्श है, इसमें सन्देह नहीं। सन् १८९९ ईसवी में कार्नेगी ने ७५ लाख रुपया मार्किन के अवैतनिक पुस्तकालयों में और दस लाख अन्यान्य देशोपकारी कार्यों में दान कर दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दस वर्ष के अभ्यन्तर उन्होंने १८ करोड़ रुपये दान कर दिये।

दैहिक परिश्रम हो चाहे मानसिक, दोनों ही प्रशंसनीय हैं। सब देशों के विद्वानों ने एक साथ परिश्रम की महिमा गाई है।

भारत जब उन्नति पर था तब किसी श्रेणी का मनुष्य परिश्रम करने में संकोच नहीं करता था। रूम का राज्य जिस समय प्रजातन्त्र था उस समय समाज के प्रधान प्रधान व्यक्ति अपने हाथ से हल जोतते थे और खुद खेती-बारी करते थे। भारत का एक वह शुभ समय था, जब राजर्षि जनकजी ने हल अपने हाथ में लेना बुरा नहीं समझा था। महारानी विक्टोरिया के जामाता सम्राट् फ्रेडरिक ने छपाई का काम सीखा था। उनके प्रथम पुत्र युवराज हेनरी ने जिल्द बाँधने का काम सीखा था। रूस के सम्राट् महाप्राज्ञ पिटर ने वेष बदल कर बढ़ई और लुहार के रूप में देशान्तर में जाकर परिश्रम के साथ कारीगरी का काम सीख कर अपनी प्रजा को सिखलाया था। इँगलैंड में ऐसे कितने ही समाज के प्रधान हैं जो काम सीखने के लिए किसी समय लुहार के कारखाने का धुआँ खाते खाते काले हो जाते थे। इस देश के धनी, मानी और अभिज्ञ लोग यदि सम्मान और संकोच की ऊँची अटारी से नीचे उतर कर खेती और शिल्पकारी के कामों में यथाशक्ति योग दें तो थोड़े ही दिनों में भारत का सुदिन लौट आवे।

नार्वे और स्वीडन के राजकुमार अस्कर और बर्नाडोटा रविवासरीय शिक्षालय स्थापित कर स्वयं बालक-बालिकाओं को

होगा वही ऋद्धि प्राप्त करने में कृतकार्य्य होगा। परिश्रम से जी चुरानेवाले आलसी लोगों के लिए सारे ब्रह्माण्ड में कोई जगह नहीं। संसार में यदि कुछ बेकार है तो वह आलसी लोगों का जीवन है। कर्महीन आलसी मनुष्यों को चिरगाढ़ निद्रित की तरह, जड़ (अचेतन) पदार्थ की तरह और जीवितहीन प्राणियों की तरह समझना चाहिए। केवल साँस लेने ही से कोई जीवन धारण करने का गर्व नहीं कर सकता। जीवन की सार्थकता तभी है जब परिश्रम के द्वारा उसका उपयोग हो। कर्म के मैदान में चक्रवर्ती महाराज से लेकर झाड़ूबरदार तक, प्रतिभावान् विद्वान् से लेकर महामूर्ख तक सभी को परिश्रम का अनिवार्य्य अधिकार है। इस परिश्रम गुण का भाग जो जितना अधिक हासिल कर सकता है वह उतना ही अधिक अपनी योग्यता और यश को बढ़ा सकता है। जो प्रतिभावान् हैं वे साधारण व्यक्ति की अपेक्षा अधिक काम कर सकते हैं और वे जिस काम में हाथ डालते हैं उसे पूरा करके ही छोड़ते हैं। प्रतिभाशाली पुरुष स्थिरचित्त होकर किसी विषय में देर तक परिश्रम कर सकते हैं। शिक्षकों के आदर्श स्वरूप रुगरी विद्यालय के प्रसिद्ध अध्यापक अर्नेल्ड का कथन है कि मनुष्यों में बुद्धि से उतनी विभिन्नता नहीं पाई जाती जितनी कर्म और श्रमशक्ति से पाई जाती है। आशा भी उसी की की जाती है जो कठिन परिश्रमी और कर्मशील होता है। आलसी की कभी कोई आशा नहीं करता।

श्रमविभाग और साझे का कारबार

"धन-कुबेर से लेकर साधारण गृहस्थ के स्वार्थ को एक सूत्र में बाँधने और बहुत लोगों की शक्ति को किसी एक विषय में नियोजित करने का उत्कृष्ट स्थल यौथ-व्यवसाय है"।

किसी एक काम को अनेक व्यक्तियों में बाँटने का नाम श्रमविभाग है। श्रमविभाग नीति के अनुसार कोई एक काम पूरा करने के लिए उस काम का भिन्न भिन्न अंश भिन्न भिन्न पुरुषों के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। और उन भिन्न भिन्न व्यक्तियों के परिश्रम के द्वारा वह काम पूर्णता को प्राप्त होता है। यह श्रमविभाग-नीति पहले पहल प्राचीन भारत में आविष्कृत हुई थी। हिन्दू-समाज इसी नीति पर चलते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों में समाज का भिन्न भिन्न काम बाँट दिया गया था और प्रत्येक वर्ण अपने कर्तव्य का उचित रीति से सम्पादन कर हिन्दू-समाज का काम अच्छी तरह चला रहे थे। संसार में जितने समाज हैं सब श्रमविभाग नीति के अनुसार परिचालित होते हैं। घर के सभी आवश्यक काम यदि एक ही आदमी के हाथ में दिये जायँ तो उनका सम्पन्न होना कदापि सम्भव नहीं, इसलिए श्रमविभागनीति का अवलम्बन कर घर के लोग जब आपस में थोड़ा थोड़ा काम बाँट लेते हैं तब बड़ी सफ़ाई से काम

नीति और धर्म का उपदेश देते हैं। राजकुमार जब प्रजागणों की सन्तान को अपनी सन्तति की तरह मान कर यत्नपूर्वक शिक्षा देते हैं, उस समय का दृश्य क्या ही मनोहर होता है। न मालूम भारत के राजा महाराजा अपने देश के बालकों की नीति-शिक्षा के लिए कब महामति मसकर के प्रदर्शित पथ का अनुसरण करेंगे? क्या वे दुग्धफेननिभ कोमल विलास-शय्या त्याग कर कठोर नीति-विद्यालय में पैर रखने और उस राजसी लिबास में शिक्षक का आसन ग्रहण कर उपदेश देने का परिश्रम स्वीकार करेंगे?

संसार में कोई एकाएक उन्नत और श्रीसम्पन्न नहीं होता। एक ही दिन के परिश्रम से कोई ज्ञान, यश और सम्पत्ति के द्वार तक पहुँचना चाहे यह असम्भव है। ज्ञान, विद्या, धन और यश ये सभी श्रम साध्य हैं। बालक यदि परिश्रम कर विद्या न पढ़े, गृहस्थ यदि परिश्रम कर खेती न करे तो वे एक दिन विद्या और अन्नजनित सुख क्यों कर प्राप्त कर सकें। ऐसे ही कार्य्य मात्र का कारण परिश्रम है। राजभवन, दुर्ग, बड़े बड़े पुल, जहाज़ और यन्त्र (कल) आदि जितने मनुष्य-निर्मित असंख्य सुखद पदार्थ दिखाई देते हैं सब परिश्रम के ही फल हैं। जिस देश के लोग जितने अधिक परिश्रमी हैं, वहाँ के मनुष्य उतने ही अधिक सुखी हैं। अतएव यदि तुम ऋद्धिमान् होना चाहो, सुख से समय [illegible] चाहो, तो परिश्रमी बनो।

की चीज़ें रोज़ विकती हैं वहाँ दूकान का मालिक यदि अकेला ही सब सौदा वेचना चाहे और दूकान के जितने काम हैं सब स्वयं करना चाहे तो यह कभी हो नहीं सकता। वह उतना ही काम करेगा जितना कि वह अकेला कर सकता है। अवशिष्ट काम के लिए उसे सहायता लेनी पड़ेगी। अतएव अपने प्रयोजन के अनुसार दूकान का काम चलाने के लिए उसे नौकर अवश्य नियुक्त करने होंगे। एक आदमी जब अपनी दूकान का काम अकेला नहीं चला सकता, साधारण कारबार में जब इस प्रकार श्रमविभाग की आवश्यकता होती है तब जो कारबार सैकड़ों, हज़ारों आंशिक मनुष्यों के लाखों रुपये की पूंजी से स्थापित हुआ है वह विना श्रमविभाग के कैसे चल सकता है? श्रमविभाग की प्रधान उपकारिता यही है कि उसके द्वारा समय नष्ट नहीं होने पाता। कारण यह कि जिस व्यक्ति के हाथ में जो काम दिया जाता है वह उसे मनोयोग पूर्वक करता है। एक व्यक्ति के हाथ में यदि भिन्न भिन्न प्रकार के दो चार काम दिये जायँ तो सम्भव है कि एक प्रस्तुत काम को छोड़ कर और उस काम में लगे हुए मनोयोग का सूत्र तोड़ कर दूसरे नये काम में फिर से उसे मनोयोग करना पड़े और इसके साथ ही समय भी कुछ नष्ट करना पड़े। किन्तु एक व्यक्ति के हाथ में एक ही तरह का काम देने से इस प्रकार वक्त बरबाद नहीं होता और इसमें एक विशेष लाभ यह है कि एक ही काम बराबर करते रहने से उसमें

चलेगी। जो लँगड़े या अन्धे हैं वे एक जगह बैठ कर ही कोई
काम कर सकते हैं, यथा पंखा चलाना, और चरख़ा घुमाना
आदि। जो हाथ से काम करने में अयोग्य हैं, वे चिट्ठीरसा का
काम कर सकते हैं। ऐसे ही बालक और वृद्ध से सम्पादित
होने योग्य भी कितने ही काम कारख़ाने में प्रस्तुत रहते हैं।
इस यौथ व्यवसाय की उपकारिता सोच कर सुप्रसिद्ध परोप-
कारी महाजन टौम्स लिपटन ने कई वर्ष हुए अपने व्यवसाय को
साझे का कारबार क़ायम कर के अपने कर्मचारियों को उसका
हिस्सेदार बनाया। प्रत्येक अंश १५) रुपया का रक्खा गया।
चौथाई रुपया अगाऊ देने से हिस्सेदार होने का नियम निर्धा-
रित हुआ। इतने थोड़े रुपये में हिस्सेदार हो कर इत-
बड़े कारबार के लाभ का अंश प्राप्त करना कौन न
चाहेगा? सात दिन के भीतर कई करोड़ रुपयों के हिस्से-
इकट्ठे हो गये। इस साझे के कारबार का नाम लिपटन कम्-
रक्खा गया। लिप्टन कम्पनी किस ख़ूबी से चल रही है
इतने ही से जाना जा सकता है कि "लिप्टन की चाय का
खोल कर जो टिन बाहर होता है सिर्फ़ उस टिन की बि-
प्रति वर्ष साढ़े सात लाख रुपये की आमदनी होती है। य-
व्यवसाय की उपकारिता विशेषरूप से जानने की इच्छा रख-
वालों को वणिक्-श्रेष्ठ ताता के स्थापित एम्प्रेस् मिल के इति-
पर दृष्टि देनी चाहिए।

किन्तु उन दिनों उसे लोग, उपयोगी नहीं समझते थे इसीसे उसका व्यवहार भी न था। यदि उस समय कोई कुछ कोयला खान से निकाल कर किसी के घर दे आना चाहता तो वह गृहस्थ शायद उसे अव्यवहार्य समझ कभी उसका ग्रहण न करता। किन्तु देश में जब कल-कारख़ाने, रेल और स्टीमर आदि की सृष्टि हुई और भाफ तैयार करने तथा लोहा आदि धातु गलाने के लिए अधिक तेज़ आँच की ज़रूरत हुई तब सभी ने कोयले को प्रयोजनीय समझा और चारों ओर लोग कोयले की खान ढूँढ़ने लगे। रानीगञ्ज और गिरिडीह आदि जगहों की मिट्टी खोद खोद कर पत्थर के कोयले निकालने लगे। जो पहले अव्यवहार्य था वही अब धन में परिणत हुआ। किन्तु इस धन की प्राप्ति विशेष श्रमसाध्य है। ज़मीन के भीतर से कोयला निकालने के लिए बहुत मज़दूरों की ज़रूरत पड़ती है। और उसकी देख-भाल में अधिक परिश्रम करना होता है। इस प्रकार धन अनेक रूपों में अवस्थित है। रुपया धन के अन्तर्गत है अत एव रुपया कहने से धन का बोध हो सकता है किन्तु धन कहने से केवल रुपये का बोध नहीं हो सकता। आज कल सब धनों में [illegible] न धन रुपया ही है। कारण यह कि सबकी अपेक्षा [illegible]-साध्य है। आज कल व्यावहारिक काम जितना चलता है उतना अन्य प्रयोजनीय वस्तुओं से नहीं। इसीलिए मुद्रा धन के आगे और धन तुच्छ समझे जाते

किन्तु उन दिनों उसे लोग, उपयोगी नहीं समझते थे इसीसे उसका व्यवहार भी न था। यदि उस समय कोई कुछ कोयला खान से निकाल कर किसी के घर दे आना चाहता तो वह गृहस्थ [शायद उसे अव्यवहार्य समझ कभी उसका ग्रहण न करता। किन्तु देश में जब कल-कारख़ाने, रेल और स्टीमर आदि की सृष्टि हुई और भाफ तैयार करने तथा लोहा आदि धातु गलाने के लिए अधिक तेज़ आँच की ज़रूरत हुई तब सभी ने कोयले को प्रयोजनीय समझा और चारों ओर लोग कोयले की खान ढूँढ़ने लगे। रानीगञ्ज और गिरिडीह आदि जगहों की मिट्टी खोद खोद कर पत्थर के कोयले निकालने लगे। जो पहले अव्यवहार्य था वही अब धन में परिणत हुआ। किन्तु इस धन की प्राप्ति विशेष श्रमसाध्य है। ज़मीन के भीतर से कोयला निकालने के लिए बहुत मज़दूरों की ज़रूरत पड़ती है। और उसकी देख-भाल में अधिक परिश्रम करना होता है। इस प्रकार धन अनेक रूपों में अवस्थित है। रुपया धन के अन्तर्गत है अतएव रुपया कहने से धन का बोध हो सकता है किन्तु धन कहने से केवल रुपये का बोध नहीं हो सकता। आज कल सब धनों में प्रधान धन रुपया ही है। कारण यह कि सबकी अपेक्षा विशेष विनिमय-साध्य है। आज कल व्यावहारिक काम जितना रुपये से चलता है उतना अन्य प्रयोजनीय वस्तुओं से नहीं चलता। इसीलिए मुद्रा धन के आगे और धन तुच्छ समझे जाते

नहीं होता, इसका मूल्य सर्वदा एक सा बना रहता है; कभी कुछ फ़र्क़ नहीं आता। जिन्हें जिस चीज़ की ज़रूरत होती है वे उसे रुपया दे कर ले सकते हैं। रुपया देने-लेने में ख़रीदार और बेचने वाले दोनों को सुबीता होता है। रुपये का आकार छोटा होने से बोझ का भी भय नहीं रहता. साधारण वस्तुओं को ख़रीदने के लिए लोग रुपये को बे परिश्रम एक जगह से दूसरी जगह ले जा सकते हैं। इस कारण सभी लोग रुपये को चाहते हैं, और रुपये ही को सब धनों में प्रधान समझते हैं। जिनके पास जितना अधिक रुपया है वे उतने ही अधिक धनी समझे जाते हैं। राम को काठ की ज़रूरत भले ही न हो, पर रुपये का प्रयोजन अवश्य है, श्याम धान के बदले कपड़ा देना नहीं चाहता किन्तु रुपये के बदले कपड़ा देने में उसे कोई उज्र नहीं है। गोपाल भी यही चाहता है कि उसकी लकड़ी रुपया देकर कोई ख़रीद ले, जिसमें उसे राम से धान ख़रीदने में सुबीता हो। मतलब यह कि रुपया के न रहते जो असुविधा उन तीनों को थी, रुपये ने उस असुविधा को दूर कर दिया। रुपये के द्वारा उन तीनों का काम निबट गया। सिक्का कई क़िस्म का होता है, यथा सोने का, चाँदी का, तांबे का और निकेल (धातु विशेष) का। इसके अतिरिक्त ५, १०, २०, ५०, १००, ५००, १०००, और पांच हज़ार रुपये तक का नोट प्रचलित है। नोट सिर्फ़ काग़ज़ होने पर भी बादशाह की आज्ञा से उसके बदले रुपया मि

दान, सत्यपरता, मितव्ययिता, आवश्यक और अनावश्यक का ज्ञान, परिणामदर्शिता और सञ्चयशीलता आदि अनेक सद्गुण धन के सद्व्यवहार का साधक है। इसी तरह अपव्यय, अवि-चार, अपरिणामदर्शिता, अतिव्ययिता, विलासप्रियता और आलस्य आदि दुर्गुण धन के अपव्यवहार के पोषक हैं। चरित्र-हीन व्यक्ति का धन किसी अच्छे काम में लग कर अपने को सार्थक नहीं कर सकता। धन से लोगों के अनेक उपकार हो सकते हैं, अनेक प्रकार की सहायता पहुँच सकती है, यदि वह अच्छे विचारवान् परिचालक के हाथ पड़े। पर यही जब अयोग्य व्यक्तियों के हाथ पड़ता है तब यही उत्पाती बन कर कितने ही निरपराध असहाय व्यक्तियों को बुरे तौर से सताता है। बहुत लोग कहते हैं "अर्थ ही अनर्थ का कारण है"। यह कहावत उन्हीं अयोग्य व्यक्तियों के पक्ष में सङ्गटित होती है। किसी किसी विद्वान् ने धन की महिमा वर्णन करने में अतिशयोक्ति कर दिखलाया है। यथार्थ में धन है भी ऐसा ही प्रशंसनीय। जो लोग समाज के शीर्षस्थान की ओर लालच भरी दृष्टि से देखते हैं वे ऐसा ही समझते हैं कि यदि संसार में कुछ महत्त्व की सामग्री है तो एक मात्र धन। ऐसे लोगों के निकट धन देवता के समान पूजनीय समझा जाता है। धन में इतनी बड़ी शक्ति है कि जिस के पास वह रहता है उसे सम्मानभाजन बनाये रहता है। संसार में सर्वसाधारण के निकट लोगों का मान उनके आय से है

मूलधन

जिस धन से धन की वृद्धि होती हो, उसका नाम मूलधन है। मूलधन को ही लोग पूँजी कहते हैं। धन किसे कहते हैं, यह पहले कहा जा चुका है। जो परिश्रम के द्वारा प्राप्त हो और जिनसे प्रयोजनसिद्ध हों वे सभी धन हैं। इस प्रकार के जितने धन हैं वे सब मनुष्य के परिश्रम के फल हैं। परिश्रम के द्वारा जो धन उपार्जन किया जाता है, उसमें आवश्यक खर्च करके जो कुछ बच जाता है वही मूलधन या पूँजी का काम देता है। धन के द्वारा कोई व्यापार करने ही से धन की वृद्धि होती है। धन को मिट्टी के नीचे छिपा रखना मानो उसको मिट्टी में मिलाना है। धन उत्पन्न करने के ये तीन साधन मुख्य हैं— श्रम, व्यवसाय, और मूलधन। थोड़े मूलधन से भी कितने ही लोग परिश्रमपूर्वक व्यवसाय कर कुछ ही दिनों में मालामाल हो गये हैं। समाचार-पत्र के विज्ञापनों में जो यह कभी कभी देखने में आता है कि अमुक बैङ्क का ४० लाख रुपया मूलधन है अथवा अमुक कम्पनी ने एक करोड़ रुपयों की पूँजी से अमुक ... करना शुरू किया है। जो मूलधन पहले एक लाख ... में था वही योग्य व्यवसाय से वृद्धिंगत होकर इस समय ... रुपये के आकार में दिखाई दे रहा है। इस जगह समझना चाहिए कि दस पाँच मनुष्यों का संचित धन जो लाभार्थ

किसी बैंक में अथवा किसी वाणिज्य-व्यवसाय में लगाया जाता है वही मूलधन है। सारांश यह कि किसी प्रकार से सञ्चित किये धन को ही मूलधन कहते हैं। यह सञ्चित धन दस मनुष्यों का हो चाहे एक ही मनुष्य का हो।

कोई किसान या कास्तकार यदि अपने स्वगृहीत अन्न को बेच कर बिक्री के आधे रुपये से घर का खर्च चलावे और आधा रुपया मजदूरों को मजदूरी देने तथा हल, कुदाल और बैल के लिए रख छोड़े तो यह अपरार्ध भाग ही उसका मूलधन समझा जायगा। क्योंकि यही आधा भाग उसके नवीन धन के उत्पादन में सहायता करता है और पहला आधा भाग मूलधन इसलिए नहीं है कि उससे नवीन धन उत्पन्न न होकर प्रत्युत वह आपही नष्ट हो जाता है। जिस सञ्चित धन से विशेष धन लाभ करने की चेष्टा न की जाय उसे मूलधन न कहेंगे। सञ्चित धन किसी व्यवसाय में लगकर ही मूलधन का काम करता है। धन ही क्या संसार की सभी चीज़ें उचित रूप से व्यवहार में लगकर विशेष फलदायक होती हैं। यदि कल-कारखाने से काम न लिया जाय तो वह आपही आप धन उत्पन्न न करेंगे। धनोत्पादक वस्तु जब तक यों ही बेकार पड़ी रहेगी तब तक उसकी गणना मूलधन में न होगी। कारण यह कि वह संचित होने पर भी धन वृद्धिस्वरूप मूलधन का काम नहीं करता। जिस धन में धन उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है वह भी मूलधन

मूलधन

जिस धन से धन की वृद्धि होती हो, उसका नाम मूलधन है। मूलधन को ही लोग पूँजी कहते हैं। धन किसे कहते हैं, यह पहले कहा जा चुका है। जो परिश्रम के द्वारा प्राप्त हो और जिनसे प्रयोजनसिद्ध हों वे सभी धन हैं। इस प्रकार के जितने धन हैं वे सब मनुष्य के परिश्रम के फल हैं। परिश्रम के द्वारा जो धन उपार्जन किया जाता है, उसमें आवश्यक खर्च करके जो कुछ बच जाता है वही मूलधन या पूँजी का काम देता है। धन के द्वारा कोई व्यापार करने ही से धन की वृद्धि होती है। धन को मिट्टी के नीचे छिपा रखना मानो उसे ही मिट्टी में मिलाना है। धन उत्पन्न करने के ये तीन साधन मुख्य हैं—श्रम, व्यवसाय, और मूलधन। थोड़े मूलधन से भी कितने ही लोग परिश्रमपूर्वक व्यवसाय कर कुछ ही दिनों में मालामाल हो गये हैं। समाचार-पत्र के विज्ञापनों में जो यह कभी कभी देखने में आता है कि अमुक बैंक का ५० लाख रुपया मूलधन है अथवा अमुक कम्पनी ने एक करोड़ रुपयों की पूँजी से अमुक व्यापार करना शुरू किया है। जो मूलधन पहले एक लाख रुपयों में था वही [illegible] व्यवसाय में वृद्धि पाकर [illegible] करोड़ रुपये के आकार में दिखाई दे रहा है। [illegible] [illegible] कि [illegible]

किसी बैङ्क में अथवा किसी वाणिज्य-व्यवसाय में लगाया जाता है वही मूलधन है। सारांश यह कि किसी प्रकार से संचित किये धन को ही मूलधन कहते हैं। वह संचित धन दस मनुष्यों का हो चाहे एक ही मनुष्य का हो।

कोई किसान या काश्तकार यदि अपने संग्रहीत अन्न को बेच कर बिक्री के आधे रुपये से घर का खर्च चलावे और आधा रुपया मजदूरों को मजदूरी देने तथा हल, कुदाल और बैल के लिए रख छोड़े तो यह अपरार्द्ध भाग ही उसका मूलधन समझा जायगा। क्योंकि यही आधा भाग उसके नवीन धन के उत्पादन में सहायता करता है और पहला आधा भाग मूलधन इसलिए नहीं है कि उससे नवीन धन उत्पन्न न होकर प्रत्युत वह आपही नष्ट हो जाता है। जिस संचित धन से विशेष धन लाभ करने की चेष्टा न की जाय उसे मूलधन न कहेंगे। संचित धन किसी व्यवसाय में लगाकर ही मूलधन का काम करता है। धन ही क्या संसार की सभी चीजें उचित रूप से व्यवहार में लगकर विशेष फलदायक होती हैं। यदि कल-कारखाने से काम न लिया जाय तो वह आपही आप धन उत्पन्न न करेंगे। धनोत्पादक वस्तु जब तक यों ही बेकार पड़ी रहेगी तब तक उसकी गणना मूलधन में न होगी। कारण यह कि वह संचित होने पर भी धन वृद्धिस्वरूप मूलधन का काम नहीं करता। जिस धन में धन उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है वह भी मूलधन
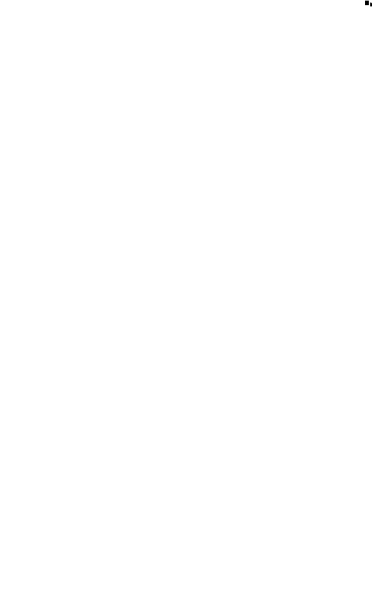
किन्हीं बन्धु-बान्धवों की सहायता नहीं, ऐसी हालत में जब कि जीवन-निर्वाह के लिए जीविका तक मिलना कठिन हो जाता है, यदि कोई करोड़पती हो जाय तो क्या लोगों की आश्चर्य्य-भरी दृष्टि उसके ऊपर न जा गिरेगी ? अवश्य ही उसकी ओर दृष्टि का खिँचाव होगा। किन्तु खेद का विषय है कि अधिकांश लोग उस धन-कुबेर को ईर्ष्या किंवा विद्वेष की दृष्टि से ही देखेंगे। जो लोग व्यापार की महिमा से अनभिज्ञ हैं, व्यवसाय-बुद्धि से रहित हैं और गुण ग्रहण करने में अशक्त हैं, वे लोग अपने मन में समझते हैं कि जिस किसी की उन्नति या श्रीवृद्धि होती है वह असत् उपाय या भाग्य-बल से ही होती है। किन्तु ऐसा समझना ठीक नहीं। सत्यनिष्ठा, निष्कपट व्यवहार, अविचल अध्यवसाय, साहस, कष्ट-सहिष्णुता और मितव्ययिता का जिन्हें अभ्यास है, वे बालक होने पर भी प्रौढ़ हैं और दरिद्र होने पर भी धनी हैं। सरस्वती की उन पर कुछ कृपा न रहते भी वे लक्ष्मी की कृपा से कभी वञ्चित नहीं होते। संसार में कारबार करनेवाले कितने ही करोड़पति महाजन हैं किन्तु उनमें विशेष प्रतिष्ठा-लाभ करनेवालों की संख्या कितनी है ? स्वार्थत्याग, आत्मनिर्भरता और उच्चाभिलाष के साथ यदि दृढ़-चित्तता और श्रमशीलता का संयोग हो तो क्या वनजव्यापार, क्या शिल्प-कलादि, क्या साहित्य-विज्ञान सभी में लोग शीर्षस्थानीय हो सकते हैं। जिन्होंने दरिद्र के घर में जन्म लेकर अपने बाल्यकाल

है। यथा किसी ने पाँच सौ रुपये उधार दिये। साल भर के बाद उसने अपना रुपया लेना चाहा, उसे व्याज के साथ पाँच सौ पच्चीस रुपये राजा से मिलने चाहिये। राजा किसी कारणवश यदि उसका रुपया तुरन्त न दे सके तो वह दूसरे के हाथ जो उतना रुपया देने को प्रस्तुत है रुपया लेकर स्वत्व बेंच सकता है। इस प्रकार लेन-देन का व्यवहार क्रमशः बढ़ते बढ़ते बेंङ्क के नाम से विख्यात हुआ। और इसका प्रचार सारे युरोप में फैल गया। इस प्रथा का अवलम्बन करके कोई कोई प्रजा बेंङ्क में जमा किये हुए रुपये के बदले रुपये देकर स्वत्व खरीद लेती है। इस तरह के व्यवसायियों को लोग महाजन या बेंङ्कर कहते हैं। युरोप के ऐसे कितने ही महाजन हैं जो इस व्यवसाय में सम्मिलित हैं। जिनके पास नकद रुपया है और अपने उपस्थित कार्य्य में उसकी आवश्यकता नहीं है तो वे उस रुपये को सूद पर किसी को दे डालेंगे और अपने मूलधन को बढ़ाने की चेष्टा करेंगे। कितने ही लोग ऐसा भी करते हैं कि कम सूद पर रुपया कर्ज़ लेकर उन्हें जियादा व्याज पर कर्ज़ देते हैं जिन्हें किसी काम के लिए रुपये की बड़ी जरूरत होती है। रुपया पास में न रहने के कारण हार कर उन्हें अधिक सूद पर रुपया लेना ही पड़ता है। जो लोग महाजनी करते हैं वे केवल लेनदेन करते हैं और सूद के द्वारा लाभ उठाते हैं। किन्तु जिनके पास महाजनी कारबार करने योग्य पूँजी नहीं है वे लोग महाजन से कम सूद पर कर्ज़

न हो, जहाँ अधिक दिनों तक युद्ध जारी रहेगा वहाँ प्रजाओं के प्राणनाश होने के साथ साथ देश की दशा भी नष्ट हो जाती है। धननाश होने के कारण प्रजाओं के घर, द्वार, खेती-बारी सब नष्टप्राय हो जाती है। जो कुछ अवशिष्ट होना बाकी रह जाता है, वह महामारी और दुर्भिक्ष आदि से पूरा हो जाता है। तदनन्तर देश की दरिद्रता दूर करने और प्रजाओं की रक्षा करने की ओर राजा की प्रवृत्ति होती है। किन्तु इन कामों के लिए अधिक रुपये की आवश्यकता होती है। यदि राजा के कोष में यथेष्ट धन न रहा तो उसे ऋण लेना पड़ता है। राजा हो, चाहे प्रजा हो, ऋण लेने पर महाजन को नियमित सूद देना ही पड़ता है। पांच सौ सैंतीस वर्ष पूर्व वेनिस राज्य की ऐसी ही अवस्था थी। देश की दशा सुधारने के लिए राजा को मन्त्रिगणों की सलाह से प्रजा से ऋण लेना पड़ा। मन्त्रियों ने यह व्यवस्था की कि जिसकी आमदनी सौ रुपया सालाना है वह राजा को एक रुपया कर्ज़ दे, जो व्यक्ति एक सौ रुपया ऋण देगा वह पांच रुपये सालाना सूद पावेगा। इस शर्त पर प्रत्येक प्रजा ने राजा को [illegible]नी हैसियत के मुताबिक कर्ज़ दिया। और वे लोग पांच रुपये [illegible] सूद पाने लगे। वेनिस के राजा ने जैसे ही प्रजाओं से [illegible] राज-कार्य्य में ख़र्च किया वैसे ही उन्होंने प्रजाओं को [illegible] अधिकार दे दिया कि जिस प्रजा को जब अपने रुपये [illegible] हो ले सकता है अथवा जिसे चाहे दिला सकता

दूसरी जगह में भी धनायाम मिल सकता है। यथा मेरा दस हज़ार रुपया इलाहाबाद के किसी बैङ्क में जमा है। मुझे कलकत्ते के एक सौदागर के पास पाँच हज़ार रुपया भेजना है। इलाहाबाद के बैङ्क ने पाँच हज़ार रुपये की हुंडी कलकत्ते के एक बैङ्क के नाम से लिख कर मुझे दे दी। मैंने यह हुंडी सौदागर के पास भेज दी। सौदागर को उस हुंडी के ज़रिये वहाँ बैङ्क से पाँच हज़ार रुपये मिल जायँगे। हुंडी के रुपये पर सैकड़ा पीछे कुछ ब्याज का नियम है जो हुंडी भेजने वाले से लिया जाता है। हुंडी कई तरह की होती है जैसे दर्शनी हुंडी—अर्थात् जिसे देखते ही महाजन को रुपया दे देना होता है। मियादी हुंडी जिसमें रुपया देने की अवधि लिखी रहती है, ऐसे ही इसके और भी कितने प्रभेद हैं। दर्शनी हुंडी में ब्याज कुछ अधिक देना पड़ता है। जो लोग महाजनी कारबार करते हैं उन्हीं में हुंडी का लेन देन चलता है। सिवा महाजन के और लोगों में हुंडी लेने देने का व्यवहार नहीं है।

बैङ्क का तीसरा नियम रुपया रखने का यह है कि जो लोग उसमें रुपया जमा करते हैं उन्हें बैङ्क एक चेकबही देता है। चेकबही में बतौर रसीद के छपे हुए नम्बरदार पत्र रहते हैं। जमा करने वाले को जब जितने रुपये की ज़रूरत हुई तब वे चेकबही के आधे पत्र पर रुपये की तादाद और अपना नाम लिख कर बैङ्क में भेजते हैं, बैङ्क उतना रुपया उन्हें भेज देता है।

लेकर और अधिक सूद पर कर्ज़ लगा कर नफ़ा उठाते हैं। युरोप में इस तरह के व्यवसाय से लोग अच्छा पैसा कमा लेते हैं। इस क्षुद्र महाजनी का नाम "बैङ्किङ्ग" है। थोथ महाजनी या बैङ्किङ्ग के द्वारा धन की वृद्धि होती है और देश समृद्धि-शाली होता है। सभी बैङ्कों में प्रायः एक ही ढङ्ग का काम होता है, किन्तु नियम सभी के भिन्न भिन्न होते हैं। सामान्यतः बैङ्क में रुपया जमा करने के चार नियम हैं।

पहला नियम यह कि बैङ्क जो रुपया किसी का जमा कर लेगा वह फिर कभी लौटावेगा नहीं केवल नियमित सूद बराबर दिया करेगा। उस जमा को बैङ्कर जिस काम में अपना विशेष लाभ देखेगा लगावेगा। इसमें जमा करनेवाले और बैङ्क दोनों को लाभ पहुँचता है।

बैङ्क का दूसरा नियम हुंडी* लेने देने का है। मान लो किसी ने बैङ्क में कुछ रुपया जमा किया। ज़रूरत पड़ने पर बैङ्क ने उसे नक़द रुपया न देकर दूसरे महाजन के नाम (जिसके साथ उसका कारबार जारी है) हुंडी लिख दी। हुंडी का रुपया वह दूसरा महाजन उसे दे देगा। हुंडी से इतना सुबीता ज़रूर होता है कि जमा किया हुआ रुपया वक्त आजाने पर

---

* हुंडी एक प्रकार का मनीआर्डर "A bill of exchange" है।

एक पाश्चात्य विद्वान ने भारतवर्ष की आर्थिक नीति की आलोचना करते हुए बहुत ही ठीक कहा है कि "भारतवर्ष में जो इतनी अधिक दरिद्रता है उसका प्रधान कारण भारतवासियों के अर्थ-व्यवहार की अनभिज्ञता है।" हमारे देश में जिन जमींदारों के पास रुपया है, वे उन रुपयों को किसी वाणिज्य व्यवसाय में लगाना नहीं चाहते। यदि वे अनेक स्थानों में बङ्क स्थापित कर के उन रुपयों को शिल्पकारी या और ही किसी तरह के लाभकारी व्यवसाय में लगाते तो थोड़े ही दिनों में देश धन-सम्पन्न हो जाता और दरिद्रों की संख्या कम हो जाती। इङ्गलैण्ड जो इस समय धनधान्य से परिपूर्ण हो कर लक्ष्मी का निवासस्थान बन रहा है, उसका कारण वहाँ एक मात्र व्यवसाय है। अर्थ व्यवहार की अभिज्ञता ही उन सब सुख-सामग्रियों की सिद्धि-साधन का गुप्त मन्त्र है। इङ्गलैण्ड में पाँच करोड़ मनुष्य निवास करते हैं। इन पाँच करोड़ मनुष्यों में किसी के पास दस करोड़ रुपये हैं और किसी के पास दस रुपये तक नहीं। इङ्गलैण्ड में भी बहुत लोग ऐसे हैं जिनके पास रुपये नहीं हैं। इस अवस्था वाले मनुष्य एक पैसा भी बैङ्क में जमा नहीं कर सकते। और कोई कोई करोड़ो की पूंजी लेकर व्यवसाय चला रहे हैं। इङ्गलैण्ड में व्यवसाय का रुपया प्रत्येक व्यक्ति पर तीन सौ पैड़ता है। इतना प्रचुर द्रव्य ६०२५ बैङ्कों में विभक्त होकर केवल वाणिज्य-व्यवसाय में लगा हुआ है। अर्थात् इङ्ग-

इस सुभीते निमित्तही बैङ्क में रुपये जमा किये हुए रुपये को जितना चैक द्वारा चाहें लोग ले सकते हैं और फिर जब जितना चाहें जमा कर सकते हैं। ऐसे बैङ्क में रुपया जमा करने वालों को नाम मात्र का कुछ सूद मिलता है। इस तरह के बैङ्क में सूद पाने की इच्छा से तो प्रायः कोई रुपया जमा करता भी नहीं, केवल अपनी सुविधा के लिए ही जमा करता है। शायद यह सोच कर लोग बैङ्क में रुपया रख आते हैं कि अपने पास रहने से अधिक खर्च हो जाय किंवा चोर ही चुरा ले इत्यादि अनेक सन्देहों से निश्चिन्त होने ही के लिए लोग बैङ्क-घर में रुपया जमा कर देते हैं। बैङ्क में रुपया रख देने पर उन्हें किसी तरह का भय नहीं रहता। बैङ्क उन्हें एक तरह से निश्चिन्त बना देता है और बिना कुछ वेतन लिये खज़ांची का काम करता है। कोई कोई बैङ्क इस चलते हिसाब में कुछ भी सूद नहीं देता किन्तु अमानत रुपये को सुविधा देखकर अपने लाभकारी व्यवसाय में लगा देता है। इस प्रकार के महाजनी कारबार से जातीय उन्नति के साथ देश की श्रीवृद्धि होती है। किन्तु इस यौथ व्यवसाय में कुछ कम उत्तरदातृत्व नहीं है। कारण यह कि बैङ्क के अध्यक्ष किंवा प्रधान कर्मचारियों की असावधानी, अदूरदर्शिता और स्वार्थपरता से कहीं बैङ्क का दिवाला निकल गया तो धन-नाश के साथ बड़ी भारी बदनामी होती है और उस बैङ्क से व्य रखनेवाले लोगों की हानि का तो कुछ कहना ही नहीं।

कम संख्या से भारत में व्यवसाय चल रहा है इससे देश की दशा पलटना असम्भव है।

भारतवासियों को देश की दशा सुधारने के लिए उन्नतिशील, मर्यादित, परिश्रमी और दूरदर्शी होना चाहिए। और उन लोगों को सम्मिलित दान के द्वारा जगह जगह कृषिशाला, शिल्पविद्यालय, आरोग्यभवन, दुर्भिक्षकार्यालय, अनाथाश्रम, चिकित्सालय आदि अनेक लोकोपकारी यज्ञ भिन्न भिन्न नाम से स्थापित करने चाहिए। जब तक भारतवासियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट न होगा, जब तक भारतवासी महाजनी करना न सीखेंगे तब तक भारत की दशा का सुधार न होगा। अतएव क्या धनी, क्या गरीब, क्या स्त्री, क्या पुरुष देश के हित-साधन पर सभी को ध्यान रखना उचित है।

महाजनी कारबार में हाथ डालने ही से कोई दौलतमन्द नहीं हो जाता, इसके लिए शिक्षा और अभ्यास की बड़ी आवश्यकता है। अशिक्षित लोग प्रायः किसी काम में सफलता नहीं प्राप्त कर सकते अतएव कैसा ही कोई काम क्यों न हो, उस काम के अनुकूल शिक्षा-लाभ करना प्रथम कर्तव्य है। जो लोग महाजनी कारबार से उन्नति करना चाहें उन्हें कुछ दिन किसी उन्नतिशील कार्य-कुशल महाजन के पास रह कर शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। जो लोग बहुत दिनों से महाजनी करते हैं उन्हें व्यवसाय करते करते इस बात का तजरिबा हो जाता है कि

लैण्ड के प्रजागण पन्द्रह अरब रुपये वाणिज्य-विभाग में लगाये हुए हैं। किन्तु भारत में तीस करोड़ मनुष्य रहते हैं। इङ्गलैण्ड से यहाँ की जन-संख्या छः गुनी अधिक है। तो भी यहाँ केवल १२७ बैङ्क हैं। सम्पूर्ण भारत के वाणिज्य मूल-धन की संख्या पैंतालीस करोड़ रुपये मात्र है। जो भारत के प्रत्येक व्यक्ति पर डेढ़ रुपया से अधिक नहीं बैठता। सोचने की बात है, अँग्रेज़ों की संख्या भारतवासी के षष्ठांश के बराबर होने पर भी वे ४७ गुना अधिक बैङ्क इङ्गलैण्ड में स्थापित कर के ३३ गुनी अधिक पूंजी से व्यापार कर रहे हैं। अभिप्राय यह कि जब भारत के तीस करोड़ मनुष्य ४५ करोड़ रुपयों से व्यापार का प्रचार कर रहे हैं तब इङ्गलैण्ड-निवासी ५ करोड़ मात्र १५ अरब रुपयों से वाणिज्य की प्रतिष्ठा बढ़ा रहे हैं। ऐसी वाणिज्यशील जाति की श्रीवृद्धि न हो तो किस की हो? इस देश के धनाढ्य और मध्य अवस्था के धनी मिल कर यदि जगह जगह में यौथ-बैङ्क स्थापित करें और गाँव गाँव में मूल बैङ्क की शाखा प्रशाखायें स्थापित करके मूल धन को किसी लाभकारी व्यवसाय में लगावें तो देशोद्धार होने में कुछ सन्देह न रहे। देश की दरिद्रता यहाँ तक बढ़ गई है कि यदि अब सब लोग मिल कर धन-वृद्धि की चेष्टा न करेंगे तो फिर देशोद्धार होने की आशा नहीं। जब तक सब लोग मिल कर यौथ व्यवसाय की अनेकानेक सृष्टि न करेंगे तब तक व्यवसाय से विशेष लाभ न होगा। जिस

महाजनी में किस तरह, कब, क्या लाभ होता है और किस गफ़लत से क्या हानि होती है। इन सब बातों को भलीभाँति हृदयस्थ करके तब किसीको महाजनी कारबार में प्रवृत्त होना चाहिए। महाजनी करने के पहले यह देखना चाहिए कि किस व्यापार में कितनी सुविधा या असुविधा है। तदनन्तर अपनी सुविधा के अनुसार बैङ्क की नियमावली ठीक करनी चाहिए।

सेविंग बैङ्क (संचयी कार्यालय)

डाकघर के नाम से प्रायः सभी लोग परिचित हैं। भारतवर्ष में कोई गाँव ऐसा नहीं जिसे डाकघर से सम्बन्ध न हो। डाकघर के द्वारा जो लोगों का उपकार होता है यह भी किसीसे छिपा नहीं है। प्रजाओं के उपकार का ख़याल करके ही गवर्नमेंट ने जगह जगह में डाक-विभाग की सृष्टि की है। इसी डाक विभाग के साथ गवर्नमेंट ने अपना सेविंग बैङ्क भी जारी कर रक्खा है। पोस्ट आफ़िस के अन्यान्य कामों के साथ सेविंग बैङ्क का भी काम होता है। इस बैङ्क का नियम बहुत सीधा है। इस बैङ्क में क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या स्त्री सभी को रुपया जमा करने का अधिकार है। जब जो चाहे वे अयास रुपया जमा कर सकता है। किन्तु रुपया जमा करने के पहले इस बैङ्क

बैङ्क में जमा करने लगे तो चक्रवृद्धि सूद के हिसाब से दस वर्ष में तुम १७००) के अधिकारी हो जाओगे।

पहले साल की जमा १४४)
सूद ४।-)

१४८।-)
दूसरे साल का जमा १४४)

२९२।-)
सूद ८।।)
तीसरे साल का जमा १४४)

४४५-)
सूद १३।-)

४५८।=)
चौथे साल का जमा १४४)

६०२।=)
सूद १८)

६२०।=)

(७) अपने जमा किये हुए रुपये का आवश्यकतानुसार जितना अंश चाहे हरेक हफ़्ते में निकाल सकता है।

(८) जमा किये हुए रुपये का कोई सूद न ले तो वह साल के आख़ीर में असल रुपये के साथ मिला दिया जाता है और उसका भी सूद चलता है।

(९) बैङ्क को दिवालिया होने या और किसी तरह से रुपया डूबने का भय नहीं रहता।

सैकड़ा पीछे ३) सालाना के हिसाब से हज़ार रुपये का सूद तीस रुपया होता है। प्रति दिन यदि कोई पाँच पैसा जमा करे तो साल में उसका तीस रुपया जमा होगा। इससे यह जाना गया कि जो पाँच पैसा रोज़ बचाता है उसे मानो एक हज़ार रुपया जमा करने का फल प्राप्त होता है। जिस गृहस्थ का मासिक आय पचास रुपया है उसका दैनिक आय १॥=)हुआ। इसकी चौथाई।=)॥ रोज़ बचाने से महीने में १२) और साल में १४४) जमा होगा। यदि तुम सेविंग बैङ्क में ४८००) जमा कर सकोगे तो तुम्हें १४४) सालाना सूद मिलेगा। कहने का अभिप्राय यह कि यदि तुम ५०) मासिक पाते हो और प्रति दिन ।=)॥ अपने आय से बचाते हो तो तुम्हें ४८००) जमा करने का फल सालही साल मिलता जायगा। मान लो यदि तुम २५ वर्ष की उम्र से ५०) महीना पाने लगे और प्रति वर्ष पूर्वोक्त नियमानुसार १४४)

पाँचवें साल का जमा १४४)

७६४।=)

सूद २३)

७८७।=)

छठे वर्ष का जमा १४४)

९३१।=)

सूद २७॥≡)

९५९।-)

सातवें वर्ष का जमा १४४)

११०३।-)

सूद ३३-)

११३६।=)

आठवें वर्ष का जमा १४४)

१२८०।=)

सूद ३८।=)

१३१८॥)

सकते हैं और कितने हो भी गये हैं। एक पैसा रोज़ चाहें तो कुली मज़दूर तक भी बचा सकते हैं। एक पैसा रोज़ बचाया जाय तो महीने में आठ आना हो जायगा। इस आठ आने की शक्ति कुछ ऐसी वैसी नहीं है। हम लोगों में शायद कितने ही ऐसे होंगे जिन्होंने एक अधेली से बड़ा आदमी बनने की बात न सुनी होगी। ये अधेली बावू बङ्ग देश के धनकुवेरों में एक नामी और मान्य व्यक्ति थे। वे राना घाट के प्रसिद्ध पाल-वंश के गौरवस्वरूप थे। जिनके पास पहले एक कानी कौड़ी तक न थी वे अतुल ऐश्वर्य के स्वामी होकर दीन-दुखिया और अनाथों को जो दान दे गये, उसकी संख्या नहीं।

अधेली बावू के पिता सहस्रारामपाल पान की बिक्री से जीवन-निर्वाह करते थे, इस कारण सब लोग उन्हें "पान्ती" कह कर पुकारते थे। वे रोज़ ही पान लेकर बाज़ार जाते थे और पान बेच कर जो कुछ पैसा उन्हें मिलता था उसीसे किसी तरह गुज़र करते थे। इस कष्ट की दशा में उनके पुत्र कृष्ण पान्ती ने संचय का महत्त्व समझा था। वे पान बेच कर जो कुछ पैसा पाते थे उनमें से दो एक पैसा रख छोड़ते थे, यों ही कुछ पैसे उनके जमा हुए और एक दिन आठ आने के पान बिके। पहले का जमा किया हुआ पैसा आवश्यक ख़र्च में भुगतान कर इस आठ आने की पूँजी से वे व्यवसाय करने लगे। यों ही धीरे धीरे व्यवसाय की शिक्षा, मितव्यय और संचय के

इस प्रकार यौथ कारबार का जितना ही अधिक प्रचार होगा उतना ही समाज का और देश का मङ्गल होगा। यौथ कारबार करनेवाले सभी के प्रशंसनीय और सवर्ग सोत्साह सहायता पाने योग्य हैं। किन्तु हम यहां एक और ही प्रकार के यौथ अनुष्ठान का उल्लेख करते हैं। स्वार्थ के साथ जिसका बहुत ही अल्प सम्बन्ध है। विशेषतः उसमें दया की ही प्रधानता है। भारत में जो कहीं कहीं, विधवाश्रम, अनाथाश्रम, अन्धाश्रम, सेवाश्रम, रामकृष्ण मिशन और रोगचर्यालय आदि स्थापित हैं। हम जिस अनुष्ठान का उल्लेख करना चाहते हैं इसी श्रेणी के अनुष्ठानों में है। ऐसे ऐसे स्वार्थरहित धर्ममूलक अनुष्ठान जो दस लोगों के द्वारा परिचालित होते हैं और सर्व साधारण की दानशीलता पर जिनकी स्थिति क़ायम है। इन सब आश्रम और समिति-समाजों से देश का कितना बड़ा अच्छा काम होता है इसका हिसाब लगाना कठिन है। काशी के रामकृष्ण मिशन के सेवकगण व्याधिग्रस्त यहाँ तक कि जो मृत्यु के मुख में पतित हो चुके हैं ऐसे कितने ही निरवलम्ब अरक्षित नर-नारियों को सड़क पर से उठा कर आतुराश्रम में ले जाते हैं और वहाँ बड़ी मुस्तैदी के साथ उनकी सेवा-शुश्रूषा और दवाई करते हैं। आरोग्य प्राप्त हो जाने पर उन्हें मार्गव्यय देकर उनके घर भेज देते हैं। इससे बढ़ कर दया और धर्म का दूसरा काम क्या हो सकता है? इस प्राणपरित्राणक समिति से जातीय अवनति का

इस प्रकार यौथ कारबार का जितना ही अधिक प्रचार होगा उतना ही समाज का और देश का मङ्गल होगा। यौथ कारबार करनेवाले सभी के प्रशंसनीय और सबसे सोत्साह सहायता पाने योग्य हैं। किन्तु हम यहां एक और ही प्रकार के यौथ अनुष्ठान का उल्लेख करते हैं। स्वार्थ के साथ जिसका बहुत ही अल्प सम्बन्ध है। विशेषतः उसमें दया की ही प्रधानता है। भारत में जो कहीं कहीं, विधवाश्रम, अनाथाश्रम, अन्धाश्रम, सेवाश्रम, रामकृष्ण मिशन और रोगचर्यालय आदि स्थापित हैं। हम जिस अनुष्ठान का उल्लेख करना चाहते हैं इसी श्रेणी के अनुष्ठानों में है। ऐसे ऐसे स्वार्थरहित धर्ममूलक अनुष्ठान जो दस लोगों के द्वारा परिचालित होते हैं और सर्व साधारण की दानशीलता पर जिनकी स्थिति क़ायम है। इन सब आश्रम और समिति-समाजों से देश का कितना बड़ा अच्छा काम होता है इसका हिसाब लगाना कठिन है। काशी के रामकृष्ण मिशन के सेवकगण व्याधिग्रस्त यहां तक कि जो मृत्यु के मुख में पतित हो चुके हैं ऐसे कितने ही निरवलम्ब अरक्षित नर-नारियों को सड़क पर से उठा कर आतुराश्रम में ले जाते हैं और वहां बड़ी मुस्तैदी के साथ उनकी सेवा-शुश्रूषा और दवाई करते हैं आरोग्य प्राप्त हो जाने पर उन्हें मार्गव्यय देकर उनके घर देते हैं। इससे बढ़ कर दया सकता है? इस

इस प्रकार यौथ कारचार का जितना ही अधिक प्रचार होगा उतना ही समाज का और देश का मङ्गल होगा। यौथ कार-चार करनेवाले सभी के प्रशंसनीय और सबसे सोत्साह सहा-यता पाने योग्य हैं। किन्तु हम यहां एक और ही प्रकार के यौथ अनुष्ठान का उल्लेख करते हैं। स्वार्थ के साथ जिसका बहुत ही अल्प सम्बन्ध है। विशेषतः उसमें दया की ही प्रधानता है। भारत में जो कहीं कहीं, विधवाश्रम, अनाथाश्रम, अन्धाश्रम, सेवाश्रम, रामकृष्ण मिशन और रोगचर्यालय आदि स्थापित हैं। हम जिस अनुष्ठान का उल्लेख करना चाहते हैं इसी श्रेणी के अनुष्ठानों में है। ऐसे ऐसे स्वार्थरहित धर्ममूलक अनुष्ठान जो दस लोगों के द्वारा परिचालित होते हैं और सर्व साधारण की दानशीलता पर जिनकी स्थिति क़ायम है। इन सब आश्रम और समिति-समाजों से देश का कितना बड़ा अच्छा काम होता है इसका हिसाब लगाना कठिन है। काशी के रामकृष्ण मिशन के सेवकगण व्याधिग्रस्त यहां तक कि जो मृत्यु के मुख में पतित हो चुके हैं ऐसे कितने ही निरवलम्ब अरक्षित नर-नारियों को सड़क पर से उठा कर आतुराश्रम में ले जाते हैं और वहाँ बड़ी मुस्तैदी के साथ उनकी सेवा-शुश्रूषा और दवाई करते हैं। आरोग्य प्राप्त हो जाने पर उन्हें मार्गव्यय देकर उनके घर भेज देते हैं। इससे बढ़ कर दया और धर्म का दूसरा काम क्या हो सकता है? इस प्राणपरित्राणक समिति से जातीय अवनति का

है। सृष्टि के आरम्भ के मनुष्य जिस तरह जीवन-निर्वाह करते थे, वह बात अब नहीं। जैसे जैसे सभ्यता बढ़ती गई वैसे वैसे आवश्यक वस्तुओं की मात्रा भी बढ़ती गई। साथ ही इसके जीविका के मार्ग में भी बहुत कुछ उलट फेर हो गया। प्रकृति के परिवर्तन से सभी चीज़ों में कुछ न कुछ परिवर्तन हो ही जाता है। आज कल प्रतिद्वन्द्विता ने ऐसा भयङ्कर रूप धारण किया है और दिनों दिन धारण किये जा रही है जिससे रोज़गार का रास्ता बहुतों के लिए एक प्रकार बन्द सा होता जा रहा है। किन्तु बिना रोज़गार के कोई अपना निर्वाह नहीं कर सकता इसलिए अपनी शक्ति के अनुसार जिसने जिस रोज़गार में सुबीता देखा वह उसी में प्रवृत्त हो गया। इसीसे खेती, कारीगरी, वैद्यवृत्ति, तिजारत, महाजनी, नौकरी, मज़दूरी आदि रोज़गारों के द्वारा सभी लोग जीवन-निर्वाह कर रहे हैं। किसी प्रकार जीवन धारण करना भिन्न बात है और लक्ष्मी प्राप्त करके देश को समृद्धिशाली बनाना भिन्न बात है। विशेष धन लाभ करने का प्रधान उपाय वाणिज्य ही है। खेती के द्वारा भी लोग धन संग्रह कर सकते हैं। यद्यपि खेती में वाणिज्य की अपेक्षा लाभ का भाग कम है तथापि लोगों ने खेती को ही श्रेष्ठ माना है। श्रेष्ठ मानने का कारण शायद यही है कि खेती में स्वाधीनता रहती है और मनुष्यों के जीवन धारण का आधार खेती ही है। यदि खेती न करके सब लोग तिजारत या महाजनी या और ही

ह के रोज़गार में लग जायँ तो अन्न मिलना लोगों को दुर्लभ जायगा, विना अन्न खाये कोई जी थोड़े ही सकता है। अतएव ती करना सब रोज़गारों में श्रेष्ठ माना गया है। यदि रुपये के दले खाद्य पदार्थ न मिले तो करोड़पती का भी विना अन्न के यही हाल हो जो एक भिखारी का होता है। वाणिज्य का भी विशेष भाग अन्न की ख़रीद बिक्री ही पर अवलम्बित है। अत-एव खेती को वाणिज्य का भी मूल कह सकते हैं। असल में वाणिज्य की प्रधान सामग्री दो ही हैं, एक अन्न और दूसरी कारीगरी की चीज़ें। खेती, वाणिज्य और नौकरी के अतिरिक्त और भी कितने ही उच्च-शिक्षासाध्य स्वतन्त्र व्यवसाय हैं। यथा—विकालत, वैद्यवृत्ति, अख़बार आदि निकालना, ग्रन्थरचना, पुस्तकें बेचना और मुद्रालय आदि; इन सब व्यवसायों के द्वारा भी लोग धनवान् हो सकते हैं। किन्तु नौकरी, जो इस समय रोज़गारों में प्रधान हो रही है और सहज ही सबको मि भी जाती है वह अधमवृत्ति में गिनी गई है। कारण यह सेवावृत्ति भिक्षा से कुछ ही अच्छी है। मनुस्मृति में भी लि है—"सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत्"। देखा मनुजी ने सेवा को कुत्ते की वृत्ति से तुलना दी है। गोसां तुलसीदासजी ने भी कहा है—"सेवक सुख चह मान भिखारि तथा "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं" नीति में भी लिखा है "को मूढ़ः सेवकादन्यः" इन सब बातों से यही सिद्ध होत

वेतन का क्लर्क हो, व्यवसायियों की तरह रुपया पैदा करना नहीं जानते। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि अधिक वेतन पानेवाले विचाराधीशों (जज) की अपेक्षा वकील और बारिस्टर अधिक धन जमा कर लेते हैं। इसका कारण यही है कि जिनकी आमदनी अनिश्चित है उन्हें सञ्चय करने के लिए वाध्य होना पड़ता है। जिन्हें निर्दिष्ट समय में नियमित द्रव्य पाने का पूरा भरोसा रहता है उन्हें सञ्चय की ओर ध्यान नहीं रहता। वे अपने भविष्य आय के भरोसे निश्चिन्त रहते हैं। निश्चित आय की बुद्धि उन्हें असावधान, अमितव्ययी और अदूरदर्शी बना डालती है। किन्तु जिन लोगों का आय अनिश्चित है उन्हें इस बात का भय बना रहता है कि यदि किसी दिन या किसी महीने में कुछ न मिला तो जीवन धारण करना कठिन हो जायगा अथवा प्रतिष्ठा में हानि पहुँचेगी। अतएव जो कुछ वे कमाते हैं उसमें से कुछ न कुछ बचाने की चेष्टा ज़रूर करते हैं। अधिक वेतन पानेवाले सावधानी के साथ खर्च करके घर के सभी आवश्यक काम सम्पन्न कर सकते हैं और भविष्य के लिए कुछ जमा भी कर सकते हैं, किन्तु धनाढ्य होना उनके लिए दूर की बात है। नौकरी करके अतुल ऐश्वर्य का आधिपत्य प्राप्त करने या धनकुबेर बनते आज तक प्रायः कोई नहीं देखा गया है। क्लर्की या आफ़िसरी करके कब किसने देशोपकार के लिए लाखों रुपये दान किये हैं? अधिक से अधिक वेतन पानेवालों के लिए लाख रुपये का दान ही अतुल दान है।

मुहर्रिरी करके किसी तरह कष्ट से अपना और अपने पोष्यवर्ग का पालन करते हैं, वे ही प्रशंसनीय और समाज में प्रतिष्ठा पाने योग्य हैं। किन्तु जो उच्च पदाधिकारी अनीति का अवलम्बन कर अधिक धन प्राप्त करते हैं वे जोड़ी-गाड़ी पर चढ़ कर इधर उधर घूमने पर भी सर्व साधरण की दृष्टि में हेय और समाज में अगण्य समझे जाते हैं। कोई उनकी प्रशंसा नहीं करता। स्वाधीनचित्त, महातेजस्वी विद्यासागर महाशय ने भी नौकरी की थी। नौकरी उन्होंने अवश्य स्वीकार की थी किन्तु हीनता का स्वीकार नहीं किया था। कारण यह कि पराधीनता स्वीकार करने पर भी उन्होंने दूसरे के हाथ जीवन का स्वत्व नहीं बेचा था। वे अपने से ऊपर दर्जे के कर्मचारी की आज्ञा पालन करने के हेतु प्रस्तुत रहने पर भी अयुक्त आज्ञा के पालन में कभी उत्सुक न हुए। वे जब संस्कृत-कालेज के प्रिंसपिल थे तब एक बार शिक्षा-विभाग के प्रधान पर्य्यवेक्षक के साथ मतभेद होने पर उन्होंने पाँच सौ रुपया मासिक वेतन की नौकरी तुरन्त छोड़ दी। जीविका के और सब मार्ग बन्द होने पर नौकरी करना लज्जा का विषय नहीं है। किन्तु यह निश्चय है कि सिर्फ नौकरी करके कोई धनवान् नहीं हो सकता। यदि दैवयोग से कोई हो भी जाय तो उसकी साधुता पर सब लोग सन्देह करने लगते हैं। सन्देह का कारण भी है—इस देश के आदमी जो नौकरी करके रुपया कमाते हैं, वे मैनेजर हों चाहे एक अल्प

है। किन्तु वही प्रतिष्ठित भद्रसन्तान किसी गोदाम में दस रुपये मासिक की नौकरी करने में ज़रा भी संकोच न करेंगे और न कोई उनका उपहास ही करेगा। समाज की निम्न श्रेणी का कोई आदमी १५) मासिक वेतन की नौकरी करने पर समाज में जो सम्मान पावेगा, पड़ोस के लोग उसे जिस आदर की दृष्टि से देखेंगे, वही हज़ार रुपये की दूकान खोल कर मोदी बन बैठे तो समाज उसे आदर के शतांश का भी पात्र न समझेगा। बल्कि लोग कहा करेंगे कि "अमुक बाबू सब काम करके थके तो अब दूकानदारी करने लगे हैं।"

देशवासियों की जब ऐसी ही समझ है कि "छोटे से छोटे दर्जे की क्लर्की करना अच्छा है किन्तु दूकानदारी करना अच्छा नहीं और जो सम्मान पराधीन रह कर १५) मासिक में है वह सम्मान स्वतन्त्ररूप से दूकानदारी करके १००) मासिक लाभ में नहीं है।" तब सर्वसाधारण लोग सम्मान के मञ्चस्वरूप क्लर्की को ही हृदय से पसन्द करेंगे यह कौन सा आश्चर्य का विषय है? जो लोग अच्छे कुलशील के हैं वे धन और प्राण से भी बढ़कर सम्मान को ही प्रिय समझते हैं, इसलिए वे जब करेंगे तो क्लर्की चाहे उससे उनका सुख से निर्वाह हो या दुःखसे; क्लर्की या गुमास्तागिरी आदि कामों को छोड़ कर वे दुकानदारी कभी न करेंगे, क्योंकि दुकानदारी करने से उनका मान भङ्ग होगा। जब तक भारतवासियों के दिमाग़ में इस तरह

वाणिज्य

[illegible]

दोहा

सबको करना चाहिए सुखद वनज व्यापार ।
मान बढ़ेगा देश का होगा लाभ अपार ॥

लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए वाणिज्य का अवलम्बन करना उचित है । जो लोग वाणिज्य से सम्बन्ध नहीं रखते उन पर प्रायः लक्ष्मी कृपा नहीं करतीं । वाणिज्य के लिए मूलधन (पूँजी) कुछ न कुछ ज़रूर चाहिए । किन्तु यह मूलधन संचित द्रव्य का रूपान्तर है । द्रव्य संचय करने ही पर कोई मूलधन का अधिकारी हो सकता है । मूलधन के बिना वाणिज्य नहीं चल सकता । मूलधन और धन में क्या फ़र्क़ है यह वाणिज्य करने के पहले समझ लेना चाहिए । इसका वर्णन पूर्व के किसी पाठ में हो चुका है ।

कृषि, शिलपकारी आदि के रहते वाणिज्य में ही लक्ष्मी का वास क्यों है ? इसका कारण यह है कि जितने धन हैं, सबका एक आकार धारण करने वाली लक्ष्मी है । जितने धन हैं सब विनिमय-साध्य हैं । विनिमय (बदल) ही वाणिज्य का मूल है। कृषि से जो वस्तु उत्पन्न होती है, शिलपकारी के द्वारा जो चीज़ें

चटगाँव आदि वाणिज्य के प्रधान बन्दर थे। सुवर्णग्राम, ढाका, शान्तिपुर, मुर्शिदाबाद आदि वाणिज्य और शिल्प के केन्द्रस्थान थे। तब भी भारत के अन्न और कारीगरी की चीज़ें युरोप के पश्चिम प्रान्तवासियों के पास तक जाती थीं। क्या जल-मार्ग, क्या स्थल-मार्ग सर्वत्र ही देश का वाणिज्य फैला हुआ था। अब वे सब बातें मानो कहानी सी हो रही हैं।

बङ्ग देश की रुई और महीन कपड़े की बुनावट सारे संसार में मशहूर थी। रुई और कपड़े के वाणिज्य से बङ्ग किसी समय धन-सम्पत्ति में मानो जगत्-सेठ की आवास-भूमि बन रही थी। बङ्गाले की रुई की बड़ी खपत थी। क्या देशी क्या विदेशी सभी व्यवसायिगण बङ्गाले की रुई खरीदते थे। इससे बङ्गाले में घर घर लक्ष्मी विराज रही थी। बहुत दिनों की बात नहीं है, सन् १८५९—६० ई० में रुई के वाणिज्य से भारत में १२ करोड़ रुपया आमद हुआ था, और पृथ्वी की समस्त खान से उस वर्ष दस करोड़ रुपये की चाँदी निकली थी। अभिप्राय यह कि खान से भी उतना धन उत्पन्न नहीं हुआ जितना कि भारत की एक मात्र रुई के व्यापार से। इस घटना ने युरोप के वणिक-समाज को चौंका दिया। भारत की रुई के आय ने वहाँ की समस्त वणिक मण्डली में खलबली मचादी। तभी से पाश्चात्य वणिकगण भारत से रुई का बीज ले जाकर मिश्र और मार्किन आदि जगहों में रुई की खेती करने लगे। परिणाम यह हुआ कि इस प्रतियोगिता

साय की न्यूनता है वहाँ काम न मिलने के कारण कितने ही लोग निठल्लेपन से समय विताते हैं। वे रोज़गार की हालत में दरिद्र होना असंभव की बात नहीं है। किन्तु जिस देश में वाणिज्य की अधिकता है उस देश में काम बढ़ जाने से वहाँ के श्रमोपजीवियों को कोई न कोई रोज़गार मिल ही जाता है। वाणिज्य के प्रभाव से कितनी ही ग़ैर आबादी ज़मीन आबाद हो जाती है। कितने ही जंगल कट कर शहर बस जाते हैं।

इस देश में पहले वाणिज्य व्यवसाय का विशेष रूप से प्रचार था। अन्तर्वाणिज्य और बहिर्वाणिज्य दोनों ही के द्वारा देश अन्न-धन से परिपूर्ण था। उन दिनों देश की कितनी ही चीज़ें जहाज़ पर लाद कर चाँद, श्रीमन्त प्रभृति सौदागर समुद्र पार लेजाकर दूसरे देश में बेंचते थे और उसके बदले देशान्तर का फल जहाज़ पर लाद कर देश लौट आते थे। लोग समुद्र-तटवर्ती दूर देशों में न जाकर भारत के समीप समुद्र-तटवर्ती देशों में ही व्यापार करने जाते थे, उस समय उपयुक्त सामुद्रिक जहाज़ पर चढ़ कर वे लोग बड़े ही उत्स के साथ सिंहल द्वीप, ब्रह्मा, सुमात्रा, बोर्नियो, बलिद्वीप, और यवद्वीप आदि टापुओं में वाणिज्य करने जाते थे। वाणिज्य उन दिनों में बड़ी तरक्की पर था। देश में धनवानों की ही संख्या अधिक थी। राजा वल्लालसेन के समय में सेठ वल्लभानन्द के वङ्ग देश के लिए मानो रथ्‌सचाइल्ड थे। ताम्रलिप्त (तमलुक)

से सुसज्जित होकर वेनिस के वणिक गणों ने स्पेन, पुर्तगाल फ्रांस, इँगलैंड आदि पाश्चात्य देशों में और मिसर, अरब, और हिन्दुस्तान आदि प्राच्य देशों में वाणिज्य फैला दिया । जो शुरू शुरू में केवल मछली और नमक का व्यापार करते थे वे धीरे धीरे रेशम, रुई, मसाला, मेवा, हाथी के दाँत, सोना, चाँदी, लोहा, तामा, सीसा, तेल, लकड़ी, अनाज, ऊन, कोर्च, कागज़, कपड़ा और चमड़ा आदि अनेक उपयोगी चीज़ों के व्यापार में प्रवृत्त हुए। वेनिस की वह बालुकामयी भूमि व्यापारियों के अतुल साहस और उद्योग से स्वर्णमयी होगई । वेनिस में लोहा, पीतल और अस्त्र-शस्त्रादि के कारख़ाने स्थापित हुए । कहते हैं कि पन्द्रहवीं शताब्दी में वेनिस नगर में विशेष धन-सम्पन्न-जनों की संख्या एक हज़ार से कम न थी और दो लाख से अधिक प्रजाओं का निवास था । १३७१ ई० में वेनिस में वैङ्क स्थापित हुआ । संसार में यही पहले पहल वैङ्क की सृष्टि हुई । वेनिस का महत्त्व यहाँ तक बढ़ा कि प्रत्येक जाति का तिजारती जहाज़ वेनिस के बन्दर में आकर ठहरने लगा । देश देश के महाजनों से वेनिस का राजपथ भरने लगा । वेनिस का प्रताप, वेनिस का नाम सारी दुनियाँ में फैल गया । वह जनहीन जलावेष्टित टापू इस प्रकार लक्ष्मी का घर क्यों बन गया ? इसका एक मात्र उत्तर है "वाणिज्य" । वाणिज्य से ही वेनिस उन्नति के ऊँचे शिखर तक पहुँच गया । किन्तु वही वेनिस अब इँगलैंड के आगे अगण्य हो रहा है । क्यों अगण्य

करते उनको व्यवसाय का अनुभव बढ़ गया और कुछ कुछ सफलता भी प्राप्त होने लगी। उनके इस पुरुषार्थ और ज़ी तोड़ परिश्रम का पुरस्कारस्वरूप व्यवसाय में एक बार ७७५०) रु० लाभ हुआ। इस द्रव्य से वे नीलामी चीज़ ख़रीदने और बेचने लगे। उससे उन्हें अधिक लाभ हुआ। जब उनके पास पूँजी पूरी हो गई तब वे नमक के व्यापार में प्रवृत्त हुए। इस नमक के व्यापार से उनका भाग्य चमक उठा। लक्ष्मी के लाभ का रास्ता खुल पड़ा। थोड़े ही दिनों में वे महाजनी कारबार में सब व्यवसायियों से बढ़ गये। तदनन्तर रानाघाट ख़रीद कर उन्होंने अच्छे अच्छे मकान बनवाये, फुलवाड़ी और बाग़ लगाये, एक बहुत बड़ी पोखर खुदवाई। यों ही सुकीर्ति का स्थापन कर रानाघाट की शोभा बढ़ा दी। एक बार उन्होंने मद्रास के दुर्भिक्ष-पीड़ित नर-नारियों के प्राण-रक्षार्थ तीन लाख रुपयों का चावल ख़ैरात कर दिया। कृष्णनगर के राजा ने उनकी इस उदारता से प्रसन्न होकर उन्हें चौधरी की उपाधि दी और बड़े लाट लार्ड मयरा ने उन्हें "पलनाइट" की उपाधि से विभूषित किया था। यही महाशय कृष्णपान्ती रानाघाट के प्रसिद्ध पाल-चौधरीवंश के प्रतिष्ठाता हुए।

स्वर्गीय रामदुलाल सरकार पहले एक धनाढ्य जाति के यहाँ ५) मासिक पर बालकों को प्रारम्भिक शिक्षा देने के हेतु नियुक्त हुए। इसके १०) मासिक पर वे मुनीमी करने

दिनों से आज कल करते करते आज का दिन नितान्त ही आवश्यक आ पड़ा। "बाज़ार से चीज़ आने पर चूल्हा फूँका जायगा। सौदा ख़रीदने में भी घण्टों देर लगेगी। दस बजे दफ़्तर में भी हाज़िर हो जाना चाहिए"। ये सब बातें सोच कर वे झट पट कुछ रुपया लेकर बाज़ार की तरफ़ दौड़ पड़े। किन्तु एक मित्र से वे वादा कर चुके थे कि उस दिन नौ बजे उनको अपने साथ उनकी नौकरी की सिफ़ारिश करने के लिए एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के पास ले जायँगे और एक पावनेदार को उन्होंने उसका बाक़ी रुपया चुकाने के लिए साढ़े आठ बजे बुलाया था। इधर बाज़ार का सौदा लेते देते टन टन करके नौ बज गये, जल्दी के मारे अच्छा सौदा भी न लेने पाये। सामने जो भला बुरा, सस्ता या महँगा सौदा नज़र आया उसे झटपट ख़रीद कर तुरन्त घर लौट आये। घर आने के साथ मालूम हुआ कि उनके इन्तज़ार से नौकरी के उम्मेदवार मित्र महाशय घंटों से बैठे हैं। महाजन भी आया था पर कुछ देर बैठ कर बड़े रुष्ट मुँह से लौट गया। वह चलने के वक़्त यह कहता गया कि "जब रुपया देना उन्हें मंज़ूर नहीं है तब इस तरह झूँठ मूठ ठगने की क्या ज़रूरत थी? मुफ़्त में मेरा इतना वक़् बरबाद हुआ।" और कह गया है कि रुपया लेने अब न आऊँगा, उन्हें देना हो तो मेरी कोठी में भिजवा दें।" किन्तु बेचारे मित्र अपनी गरज़ के मारे बैठे थे। लाड़िले बाबू झटपट

इत्यादि दुर्गुण रूपी शत्रुओं को दूर कर समयनिष्ठा, कार्य-निष्ठा और वाक्य-निष्ठा रूपी सन्मित्र के पाने की चेष्टा नहीं करते थे। इस अनिष्ठा का परिणाम यह हुआ कि वे अकाल में ही काल-ग्रस्त हो कर अपने परिवार को दुःख-सागर में निमग्न कर गये। सामान्य गृहस्थ की जब समय आदि की अनिष्ठता से यह दशा, तब जो समाज के सुधारक हैं, जो लाखों प्रजागणों के अभिभावुक हैं, जो भारी भारी कारखाने के परिचालक हैं और शिक्षक, सम्पादक, ग्रन्थकर्ता आदि जो सामाजिक कार्य में गुरुतर सम्बन्ध रखते हैं, उनकी अवस्था कैसी भयानक हो सकती है यह अनुभव के द्वारा जानी जा सकती है। यदि ये लोग उन कथित तीन निष्ठाओं से रहित हों तो संसार का कितना बड़ा अमङ्गल हो सकता है यह कोई नहीं कह सकता। जो अपने समय को ठीक नहीं रख सकते वे अपने काम के सिल-सिले को भी ठीक नहीं रख सकते। ऐसे अनिष्ठ व्यक्तियों की बात का कोई विश्वास भी नहीं करता और न उनके ऊपर किसी काम का भार देकर निश्चिन्त हो रहता है। अनिष्ठ लोग नहीं समझते कि यह समय कितना बहुमूल्य है, इसीसे वे अपने समय को तो वृथा नष्ट करते ही हैं किन्तु दूसरों के भी अमूल्य समय को नष्ट करने में ज़रा भी संकोच नहीं करते। जो लोग समय के अनु-सार काम नहीं करते हैं उनकी दिन दिन अवनति होती है। जो गृहस्थ ठीक समय पर खेती नहीं करेगा उसकी अच्छी उपज

न होगी। जो दुकानदार ठीक समय पर दूकान नहीं खोलेगा उसके ग्राहकों की संख्या घट जायगी। यदि कोई ख़रीदार उधार सौदा लेकर ठीक समय पर मूल्य अदा न करेगा तो फि उसे दूसरी चीज़ उधार न मिलेगी और उसका विश्वास उठ जायगा। व्यवसायियों के लिए समय-निष्ठा से बढ़ कर कोई गुण नहीं। जो व्यवसायी सभी काम समयानुसार करते हैं उन पर लोगों का विश्वास दिन दिन बढ़ता जाता है और इससे उनके कारबार की भी दिनों दिन तरक़्क़ी होती है। जिस महाजन को समय की पाबन्दी नहीं रहती उस पर से लोगों की श्रद्धा और विश्वास उठ जाता है। एक वणिक् विद्वान् का कथन है कि "वाणिज्यरूपी पहिये को अच्छी तरह चिकना रखने का तेल समय-निष्ठा ही है"। जो लोग किसी को वाक्य देकर ठीक समय पर अपने वाक्य को पूरा नहीं करते वे सिर्फ़ अपना ही नुक़सान नहीं करते, दूसरों को भी क्षतिग्रस्त करते हैं"। इस-लिए जो भाग्यवान् पुरुष हैं वे समय की मर्यादा का कभी उल्लङ्घन नहीं करते। द्रव्य की सदुपयोगिता से समय की सदुपयोगिता किसी प्रकार न्यून नहीं है। मितव्ययी फ़्राङ्कलिन कहा करते थे—"समय ही सोना है" क्योंकि सोने की प्राप्ति समय के ही सद्व्यवहार से होना सम्भव है। प्रत्येक कार्य का समय ठीक रहना चाहिए और सभी काम ठीक समय पर होने चाहिएँ। व्यवसायियों को तो भूल कर भी समय की अवहेला न

उनकी दिन दिन वृद्धि होती है। इसलिए "साधुता सिद्धि का मूल मन्त्र है" यह वाक्य जैसे और लोगों के लिए चरितार्थ होता है व्यवसायियों के लिए भी ठीक वैसा ही चरितार्थ होता है।

कोई चीज़ खरीदने, बेचने या बदलने में विश्वास ही कार्य-सिद्धि का आधार है। विश्वास के बिना व्यवसाय चल नहीं सकता। विश्वास उठ जाने से साधुता नहीं रहती। और साधुता का अभाव अधःपात का कारण होता है। व्यवसायियों के लिए विश्वास से बढ़ कर कोई दूसरी पूँजी नहीं। जिस व्यवसायी ने विश्वासरूपी पूँजी को खो दिया है, उसका व्यवसाय कितने दिन ठहर सकता है? इस देश में, वनज-व्यापार की वृत्ति में, विश्वासरूपी मूल धन का अधिकतर अभाव देखने में आता है। इसीसे श्रीवृद्धि का पथ सङ्कीर्ण हो गया है। यह अविश्वास ही का फल है कि कोई खरीदार एक चीज़ खरीदने के लिए दस दूकानों में मोल तोल करता फिरता है। बिना दस दूकान देखे उसे असली दाम का पता नहीं लगता। किन्तु इस [प्र]कार एक मामूली चीज़ के लिए इस दूकान से उस दूकान में [घ]ूमते फिरते जो समय नष्ट होता है उसकी पूर्ति किसी तरह [न]हीं हो सकती। दूकानदारों की बात का अविश्वास करके [ख]रीदार का तो यों समय नष्ट होता है, इसी तरह दूकानदारों [क]ा भी समय नष्ट होता है। दस तरह की दस चीज़ें निकाल

जो चीज़ ख़रीदी जाय उसी दर पर वेची भी जाय, तभी साधुता की रक्षा हो सकती है, तो उनकी इस मनःकल्पित साधुता के अवलम्बन करने वाले व्यवसायियों को चाहिए कि वे अपनी दूकान समेट लें और वणिकगण अपने वाणिज्य की बड़ी बड़ी कोठियों को बन्द कर के चुप-चाप बैठ रहें। ख़रीदी हुई चीज़ों पर कुछ मुनाफ़ा रख के जो वे वेंची जाती हैं यह प्रायः सभी को मालूम ही रहता है। यह लाभ और कुछ नहीं केवल व्यवसायियों के परिश्रम का मूल्यमात्र है। ख़रीदार देशी या विदेशीय चीज़ों को अपनी आवश्यकता के अनुसार बनियों की दूकान से मुनासिब दाम देकर ख़रीदते हैं, इसमें असाधुता की कौन सी बात है? किन्तु बेतरह चीज़ों का दाम बढ़ाना, अर्थात् चीज़ पर ड्योढ़ा दूना दाम कसना, एक ही चीज़ को कई दर से बेचना, नक़ली चीज़ों को असली बता कर लोगों को धोखा देना, या और ही किसी तरह से ग्राहकों को ठगना अवश्य असाधुता है। जो व्यवसायी लोभवश साधुता को उठा देते हैं उनका अवश्य पतन होता है। थोड़े ही दिनों में उनकी वञ्चकता की बात सर्वत्र फैल जाती है और कोई ग्राहक उनकी दूकान की ओर झाँकता तक नहीं। बिक्री कम पड़ जाने के कारण उनकी दूकान की कितनी ही चीज़ें ख़राब हो जाती हैं जिससे थोड़ा लाभ उठाने के बदले उन्हें ज़्यादा घाटा सहना पड़ता है। जो वणिक साधुता का अवलम्बन कर मुनासिब दाम पर सौदा बेचते हैं

रुपया एक ही साथ उन से माँगा। सत्यनिष्ठ रामानन्द तुरन्त मुर्शिदाबाद गये और महाजन का कुल रुपया चुका कर अपनी ओर से और पाँच हज़ार रुपया जमा कर आये। महाजन दुष्ट लोगों की चालबाज़ी समझ कर और रामानन्द की साधुता देख कर बड़े ही लज्जित हुए। उन्होंने अपनी कोठी के प्रधान कर्मचारी को आज्ञा दे दी कि अब से रामानन्द को सस्ते दर से रुई देना होगा और वे जितने रुपये की उधार चीज़ लेना चाहें उन्हें दी जाय। यह सुविधा पाकर रामानन्द ने अपने कारबार को बढ़ा दिया और पूर्ण लाभ उठाया। साधुना-पूर्वक व्यापार करने के प्रभाव से रामानन्द थोड़े ही दिनों में ऐश्वर्य्यशाली होकर स्वयं महाजन बन बैठे। इन्हों ने महेश्वरदास की साधुता और सत्यनिष्ठा देख कर उन्हें दो हज़ार रुपया पुरस्कार दिया था। यही रुपया महेश्वरदास के अतुल ऐश्वर्य्य का कारण हुआ।

बहुत दिनों की बात है, फ़रीदपुर ज़िला के शिलाइल ग्रामनिवासी मृत्युञ्जय विश्वास नामक एक दरिद्र व्यक्ति रोज़गार की तलाश में कलकत्ते को गया। वहाँ उसे एक चीनी आदमी से मित्रता हुई। इस चीनी मित्र के द्रव्य-साहाय्य से और उसकी सलाह से उसने बड़े बाज़ार में एक दुकान खोली। लाभ का आधा भाग मृत्युञ्जय लेगा और आधा अपने मित्र को देगा, इसकी व्यवस्था पहले ही हो चुकी थी। मृत्युञ्जय की सत्यनिष्ठा

निहोरा करके एक लाख चौदह हज़ार रुपये में वह जहाज़ उनसे मोल ले लिया। वे चाहते तो चौदह हज़ार रुपया मालिक को वापस देकर एक लाख रुपया बेखटके हज़म कर जाते। किन्तु भविष्य में जिन्हें श्रीमान् होना लिखा है, सत्यनिष्ठा जिन्हें वाणिज्य के द्वारा ऋद्धिपथ पर ले जानेवाली है, वे दरिद्र होने पर भी ऐसा काम क्यों करेंगे ? दस रुपये के वृत्तिभोगी रामदुलाल ने लाख रुपये के लोभ को रोक कर सब रुपया मालिक के सामने रख दिया ग्रैार सारा हाल उनसे आद्योपान्त कह सुनाया। सत्यता का पुरस्कार क्या कभी अप्राप्त हो सकता है ? उनके उदार मालिक मदनमोहन ने वह रुपया न लेकर सत्यनिष्ठ रामदुलाल को पुरस्कार में दे दिया। यही एक लाख रुपया पूँजी पाकर वे व्यवसाय में प्रवृत्त हुए ग्रैार सर्वदा सत्य के ऊपर कायम रहकर अतुल ऐश्वर्य के अधिकारी बने। क्या वे यह एक लाख रुपया मूलधन पाकर ही इतने बड़े ऐश्वर्यशाली बन गये ? नहीं, यदि उनके ऐश्वर्यशाली होने का कारण यह रुपया ही मान लिया जाय तो लाख ही क्या, करोड़ों रुपये की सम्पत्ति पाकर कितने ही धनाढ्य के नवकुमार थोड़े ही दिनों में उसे उड़ा कर कोरे बाबाजी क्यों बन जाते ? रामदुलाल सरकार का जो असल मूलधन था उसका नाम साधुता या सच्चरित्रता था। मान लो, यदि रामदुलाल सरकार सच्चरित्र न होते तो यह एक लाख रुपया पुरस्कार ही क्यों कर पाते ?

और साधुता से उनकी दुकान का इतना पसार बढ़ गया कि वह लाभ के अर्धांश सहित मूलधन अपने मित्र को देकर लाभ के अर्धांश से स्वतन्त्रता-पूर्वक दुकान चलाने लगा। विलायत के सौदागर ने एक दफ़ा माल भेजने के समय भूल से अपनी चीज़ों का दाम तीन सौ रुपया कम करके चालान दिया। सत्यनिष्ठ मृत्युञ्जय ने उनके हिसाब में यह भूल देख कर तुरन्त उस के दाम से तीन सौ रुपया अधिक उसके पास भेज दिया। इस साधुता से सौदागर को मृत्युञ्जय पर इतना विश्वास बढ़ा कि वह विना रुपया पाये भी मृत्युञ्जय के पास माल भेजने लगा। साधुता ने सर्वसाधारण में उसे ऐसा विश्वास-भाजन बना दिया था कि उसके कारबार से एक समय कलकत्ते का बड़ा बाज़ार भर गया था।

करोड़पती रामदुलाल सरकार जब दस रुपये की नौकरी करते थे तब एक दिन उनके मालिक ने उन्हें कोई एक नीलामी जायदाद ख़रीदने के लिए भेजा। आफ़िस में पहुँच कर रामदुलाल सरकार ने सुना कि वह जायदाद किसी ने ख़रीद कर ली। किन्तु एक जलमग्न जहाज़ नीलाम होनेवाला है। उन्हें उस जहाज़ का हाल कुछ कुछ मालूम था, उन्होंने सोचा कि उस जहाज़ को ख़रीदने से विशेष लाभ होगा। इसलिए उन्होंने मालिक से विना हुकम लिये ही १४ हज़ार रुपये में उस नीलामी जहाज़ को ख़रीद लिया। पीछे एक साहब ने उनको बहुत

लोग व्यवसाय में जघन्य उपाय (ठगपनों) का अवलम्बन करते हैं, जो लोभ के वशीभूत होकर लोगों को धोखा देकर धन बटोरना चाहते हैं, जो हृदय के सद्भाव को त्याग कर किसी तरह धन हासिल करने ही को जीवन का सार समझते हैं, कुछ ही दिनों में उनका अधःपात हो जाता है और वे अपनी असाधुता का फल हाथों हाथ चखते हैं। ऐसे लोग प्रचुर धन और प्रतिष्ठित कारबार का आधिपत्य पाकर भी उसकी रक्षा करने में असमर्थ होते हैं। जिस स्वरूप चन्द्रबाबू ने अपने उद्योग-बल से महाजनी कारबार में पूरी सफलता प्राप्त की और जो मृत्यु के समय में प्रचुर धन और वृहत् कारबार छोड़ गये; सुना जाता है उनके उत्तराधिकारी और साझेदारों ने असत् उपाय का अवलम्बन करके दस वर्ष में सब कारबार को नष्ट भ्रष्ट कर दिया।

असाधुता से सिद्धि लाभ न होने के भी अनेक दृष्टान्त हैं। ज्याबेज बल्फोर एक महामान्य, असाधारण बुद्धिमान, अत्यन्त प्रतिष्ठित, उच्चपदस्थ राजकर्मचारी थे और विलायत की पार्लियामेंट महासभा के सभ्य थे। उनकी ईश्वरभक्ति और धर्मानुराग की बात लोगों में विख्यात थी। क्या धनी, क्या दरिद्र सभी का उन पर अन्धविश्वास था। जब उन्होंने "लाईबरेटर बिल्डिंग सुसाइटी (Liberator Building Society) के लिए सर्वसाधारण के सञ्चित धन को अमानत रखना चाहा, तब सभी लोग मुक्तहस्त होकर इनको रुपया देने लगे। ब्यलफोर एक तरफ तो

अवसर को हाथ से न जाने देना चाहिए

"अवसर बार बार नहिँ आवै"

(श्रीसूरदासजी)

"जितने काम हैं सब सुयोग पाकर ही होते हैं। जो लोग सुयोग की अपेक्षा करते हैं उन्हें प्रायः फिर सुयोग नहीं मिलता"।

सभी लोगों के जीवन काल में कभी कभी सुयोग आता रहता है। किन्तु जो लोग सुयोग का सदुपयोग करना नहीं जानते, उन्हें पीछे बड़ा ही खेद होता है। कारण यह कि सुयोग बार बार हाथ नहीं आता, यदि कभी आता भी है तो बहुत थोड़ी देर के लिए। कहावत है कि "चोर के भागने पर बुद्धि बढ़ती है।" अर्थात् चोर जब घर का माल असबाब चुराकर ले जाता है तब लोग सोचने लगते हैं कि यदि इस तरह सावधान होकर रहते, खिड़की के किवाड़ खूब मज़बूत रहते, यदि रुपया घर में न रख बैङ्क में जमा कर आते तो चोर कभी न आता और आता भी तो उसे कुछ हाथ न लगता" इत्यादि। इस प्रकार अपनी सावधानी और चोर पकड़ने के कितने ही कैशल और बुद्धि का आविष्कार होने लगता है किन्तु उस समय का सारा आविष्कार वृथा होता है "चौरे गते वा किमु सावधानम् ?" चोर के भाग जाने पर सावधान होने ही से क्या? जो सुयोग हाथ से चला गया, वह क्या फिर सहज ही हाथ आ सकता है?

पठनावस्था में कितने ही छात्र उन्नति के स्वर्णमय सुयोग की अवहेला करके अपनी किशोर अवस्था को हँसी खेल, रङ्ग-रहस्य में ही बिता डालते हैं और परीक्षा में अनुत्तीर्ण होकर विफल-मनोरथ होते हैं । जब वे अपनी अयोग्यता के कारण उच्चपद पाने में असमर्थ होते हैं तब उन्हें अपने अध्ययन-कालीन सुयोग का स्मरण हो आता है। और हृदय में मर्मान्तिक अनुताप होने लगता है । किन्तु तब अनुताप होने ही से क्या हो सकता है? वह अवसर तो उन्हें फिर मिल नहीं सकता । किसी तरह अल्प वेतन ही पर उन्हें अपने जीवन का समय बिताना पड़ता है। कितने ही लोग ऐसे हैं कि उच्चपद का सुयोग मिलने पर भी वे ज़रा ज़रा सी बात में भूल कर सुयोग को खो बैठते हैं। पीछे हाथ मलकर रह जाते हैं। कितने ही आदमी ठीक समय पर उपस्थित न होने के कारण और कितने ही लोग बार बार पूछे जाने पर भी समय पर उचित उत्तर न देने के कारण सुयोग को गवांकर क्षतिग्रस्त होते हैं। कितने ही लोगों के मुँह से यह कहते सुना है कि "उस समय यदि मैं यह बात कह देता, उस समय यदि यह काम कर लेता तो उसी समय मेरा काम सिद्ध हो जाता, अब क्या ।" इस पश्चात्ताप का कारण केवल सुयोग को अपने हाथ से जाने देना ही है। गोसांईजी ने क्या ही अच्छा कहा है "का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूकि फिर का पछिताने।" बनज-व्यापार में सुयोग का सदुपयोग ही उन्नति

हित-साधन कर सकते हैं, इसका दृष्टान्तस्वरूप श्रीयुत बाबू हेमचन्द्र मित्र वर्तमान हैं। कलकत्ते के समीपवर्ती काशीपुर कृषिशाला के संस्थापक और प्रेसीडेंट हेमबाबू ग्लीवदर्स का पाट खरीदने पर नौकर थे। मालिक का काम करके जो समय बचता था उसी में इन्होंने बड़े परिश्रम से कृषिशाला स्थापित की। वे उसकी देख भाल और उचित प्रबन्ध छुट्टी के अवसर में किया करते थे। दिन भर दफ़तर में काम करने के बाद घर आकर मेहनत का काम करना कौन चाहता है? किन्तु जो लोग सुयोग-ग्राही हैं वे अवसर को कभी नष्ट होने नहीं देते। हेमबाबू जो कृषिशाला स्थापन कर कृषि-सम्बन्धी अनेकानेक शिक्षाओं के द्वारा देश के उपकार कर रहे हैं, सुयोगग्राही न होने से क्या वे इतना बड़ा काम कर सकते?

जी० एस० परांजपे नामक एक दरिद्र विद्यार्थी किसी एक मनुष्य का नौकर बनकर जापान गये थे। वे वहाँ जाकर रसोई बनाने या इधर उधर का काम करने ही में समय नहीं बिताते थे। जब उन्हें अपने मालिक के काम से छुट्टी मिलती थी तब वे शिल्प, रसायनविद्या और उसके साथ ही साथ साबुन आदि बनाने की तरकीब सीखते थे। परेल नामक स्थान में जो "डायमंड सोपवर्क्स" नाम का साबुन का कारखाना खुला है, वह इसी दरिद्र युवक की सुयोग-ग्राहिता का फल है।

निकलसन साहब ने जो "जापान में खेती" इस नाम की एक सच्ची शिक्षाप्रद, लोकोपकारी पुस्तक बनाई है, उन्हें मद्रास

इस प्रकार व्यवसाय करते करते एक बार उन्हें अच्छा सुयोग मिल गया। रामानन्दराय ने एक दफ़ा रुई ख़रीदने के लिए उन्हें मुर्शिदाबाद भेजा। वहाँ उन्होंने ८) के दर रुई ख़रीदी। जब रुई ख़रीद कर वे आ रहे थे तब रास्ते में उन्होंने सुना कि रुई का दर १६) होगया है। उन्होंने उस सुयोग को हाथ से न जाने दिया। एक साहब के हाथ से कुल रुई सोलह रुपये की दर से वेंच डाली। मूलधन का दूना रुपया इनके हाथ आ गया। इन्होंने सत्यनिष्ठ रामदुलाल सरकार की तरह कुल रुपये महाजन को दे दिये। महाजन ने इनकी साधुता से प्रसन्न होकर २०००) इन्हें पुरस्कार दिया। महेश्वर ने इस पूँजी से स्वयं रुई का कारवार प्रारम्भ कर दिया। इस व्यवसाय के द्वारा उन्हें इतना धन-लाभ हुआ कि उन्होंने कई एक ज़मींदारी ख़रीद लीं और वे अच्छे ज़मींदारों में गिने जाने लगे। एक दफ़ा वे तीर्थ-यात्रा के लिए घर से वाहर निकले। वृन्दावन जाने के रास्ते में उन्होंने देखा कि इस तरफ़ रुई के व्यापार में विलक्षण लाभ हो सकता है। उनके पास चार हज़ार रुपया था, उन्होंने झट इन रुपयों से रुई ख़रीद ली और सुयोग पाकर उसे वेंच डाला, इसमें उन्हें पूरा लाभ हुआ। तीर्थ में जाकर उन्होंने उन रुपयों को दान पुण्य में ख़र्च कर दिया।

सुयोग का सदुपयोग करने पर नौकरी करते हुए भी लोग अपनी उन्नति के साथ साथ समाज का और देश का किस तरह

वाले व्यक्ति को ही व्यवसाय-कुशल कह सकते हैं। जो लोग सुयोग का उपयोग करने में असमर्थ हैं उन्हीं लोगों के मुँह से प्रायः यह कहते सुना जाता है कि "समय बड़ा ही ख़राब बीत रहा है, मेरे ऊपर आज कल सनीचर की दृष्टि पड़ी है, मुझ पर बुरे ग्रह की दशा बीत रही है"। किन्तु जो लोग दृढ़-प्रतिज्ञ, व्यवसाय-कुशल और सुयोगग्राही हैं, वे लोग ख़राब समय, या बुरे ग्रहदशा आदि की बात कभी मन में नहीं लाते। वे संकट के समय में भी नहीं घबराते, वे सर्वनाश के अवसर में भी भावी कल्याण का बीज ढूँढ़ निकालते हैं। विपद्ग्रस्त होने पर भी उनका दिमाग़ गरम नहीं होता। किंकर्तव्यविमूढ़ की तरह सिर पकड़ कर नहीं बैठे रहते। लिमरिक शहर में लंडीफ़ूट नामक एक आदमी तम्बाकू का व्यवसाय करते थे। उनके एक छोटी सी दुकान थी। वे साधारण दूकानदार होने पर भी व्यवसाय में कुशल और दूरदर्शी थे। दैवयोग से एक रात लंडीफ़ूट की दुकान में आग लगी और दुकान की सब चीज़ें जल गईं। दूसरे दिन प्रातःकाल वे सन्तप्त हृदय से अधजली [illegible]ज़ों की देख भाल करने लगे। उन्होंने देखा कि कई एक दरिद्र [illegible]ड़ोसी जली हुई तम्बाकू को सूँघ सूँघ कर प्रसन्न होते हैं [illegible]ार राख की ढेरी से जली हुई तम्बाकू जहाँ तक पाते हैं ले [illegible]ाते हैं। यह घटना अत्यन्त सामान्य होने पर भी लंडीफ़ूट की [illegible]ष्टि से बाहर न जा सकी। उन्होंने तुरन्त उस दग्ध तम्बाकू

दूरदर्शी मिस्टर रिचर्डहल का कथन है—"जो लोग एक दम मुँह छिपाये रहते हैं, अपने प्राप्य के लिए प्रार्थना करने में कुण्ठित होते हैं, जो सभा-समाज में सिर नीचा करके बैठते हैं, लोगों के सामने लज्जा के मारे जिन के मुँह से बात नहीं निकलती मानो उनसे बहुत बड़ा अपराध हो गया है जिससे वे सर्वदा भयभीत बने रहते हैं। जो सुयोग पाकर भी काम करने में समर्थ नहीं होते, जो उचित अवसर जान कर भी अपने हृदय का भाव प्रकट नहीं कर सकते, वे मनुष्य रूपधारी एक अद्भुत जीव हैं। वे घोर युग के लिए निश्छल, साधु, शान्त और प्रशंसित कहे जा सकते हैं किन्तु इस बीसवीं शताब्दी में ऐसे लोगों का निर्वाह होना बड़ा ही कठिन है।

छठा अध्याय

आदर्श का अभाव नहीं है

संसार में अपने उद्योगबल से जो लोग उन्नत और महान् हुए हैं, उनमें कोई ऐसा नहीं जो बिना आदर्श के रहे हों। सब कोई न एक आदर्श के अनुसार ही चलते थे। कविश्रेष्ठ माइकल मधुसूदनदत्त, नवाब अब्दुललतीफ़ और मान्यवर भूदेव मुखोपाध्याय तीनों सहपाठी थे। किसी समय तीनों आदमी एक साथ बैठ कर भविष्य-जीवन के सम्बन्ध में बात चीत कर रहे थे। प्रत्येक ने अपने जीवन का उद्देश इस तरह प्रकाशित किया। मधुसूदनदत्त ने कहा—"मेरी इच्छा बैरन के तुल्य कवि होने की है"। नवाब साहब ने कहा—"मैं चाहता हूँ कि मुझे ख़ूब ऊँचा ओहदा मिले"। भूदेव बाबू ने कहा—"देश के कल्याण-साधन में मेरा जीवन व्यतीत हो, यही मेरा अभिलाष है"। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि तीनों ने अपने अपने आदर्शों के आधार पर ही अपना जीवन बिताया।

जो लोग अपनी उन्नति करते हैं, वे मानो दूसरों की उन्नति का रास्ता खोलते हैं। कारण यह कि एक को उन्नत दशा में देख

से अपना पाठ याद करते थे। इसके बाद रसोई परोस कर सबको खिला पिला कर पाठशाला जाते थे। पाठशाला से घर आकर भोजनादि करने के बाद प्रायः सारी रात जाग कर एकाग्र मन से पाठ का अभ्यास करते थे। उनके इस परिश्रम, इस निष्ठा और इस स्वावलम्बन ने ही उन्हें सरस्वती और लक्ष्मी दोनों का कृपापात्र बना दिया। उन्होंने कौन कौन से पुरुषार्थ के काम किये, यहाँ उनको हम लिखना नहीं चाहते। कर्मवीर पुरुषों के सत्कर्म-समूह को कोई कहाँ तक गिना सकता है। किन्तु वे कैसे कर्मवीर हुए, कर्मवीर होने के पहले उनका शील-स्वभाव कैसा था हम इस पर लोगों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। इस समय इस महापुरुष के बाल्यकाल की दुरवस्था और दुःख की कहानी सुन कर क्या कोई उन पर अश्रद्धा थोड़ी ही प्रकट करेगा? यदि धनवान् के पुत्र धनवान् हुए तो इसमें उनके गौरव की कोई बात नहीं। बल्कि धनवान् के पुत्र को निर्धन होना ही अप्रतिष्ठा की बात है। किन्तु यदि दरिद्र अपने उद्योग और सच्चरित्रता के बल से धनी हों तो उनका जीवन अवश्य गौरवमय और प्रशंसनीय है। असंख्य धन के अधिकारी कार्नेगी अपनी जीवनी में अपनी हीनता अवस्था की बात लिखने में ज़रा भी सङ्कुचित नहीं हुए। ग्लाडस्टोन लिभरपुल के एक व्यवसायी के पुत्र थे। ब्राइट कार्पेट का व्यापार करते थे। निकलस पीसीन ग्राम्य-पाठशाला के गुरु थे; चैनट्री दाल-चावल की

लज्जा का विषय है। क्योंकि न वे बालक हैं, न दरिद्र हैं, फिर वे परिश्रम क्यों करेंगे? जिन्हें नौकर रखने की शक्ति नहीं है वही अपने हाथों से सब काम करते हैं। जिसके पास धन है वह अपने हाथ से कोई काम क्यों करेगा? धनी हो कर भी जब काम करेहीगा तब वह धनी काहे का? मतलब यह कि जो धनी हैं उन्हें काष्ठ-पाषाणवत् दिन भर गद्दी पर लेटे पड़ा रहना चाहिए। इस तरह जीवन बिताने ही में सुख है और मर्यादा की रक्षा है"। इस प्रकार की धारणा करनेवालों और इस पर चलनेवालों का भारत में अभाव नहीं है। कितने ही धनी के सन्तान जो इस मत के अनुयायी हैं, स्वयं अङ्गसंचालन करना भी मानहानि का विषय समझते हैं। वे जब चारपाई से उठेंगे तब नौकर के कन्धों पर हाथ का सहारा देकर ही उठेंगे, मानो वे पुराने मरीज़ हैं। सोने के वक़् जब तक नौकर कपड़ा न उढ़ा देगा आप अपने हाथ से कपड़ा न ओढ़ेंगे। इतना परिश्रम करना भी वे मर्यादा से बाहर की बात समझते हैं। ऐसा वे क्यों समझते हैं, इसलिए कि कहीं उनकी अमीरी में बट्टा न लग जाय! इन अमीरों की देखादेखी कितने ही मध्यम श्रेणी के लोग बाज़ार से दो अनार ख़रीद कर अपने हाथ से घर ले आने में लजाते हैं। हम नहीं कह सकते कि भारतवासी इस भ्रम-जाल में कब तक पड़े रहेंगे? पूरब में जापानी और पश्चिम में अफ़ग़ान कुल के भूषण अमीर अबदुर्रहमानख़ाँ का उदाहरण

दुकान खोल कर परचूनी का काम करते और विलियम ब्लैक घोड़े का साज़ बना कर बेचते थे।

रानाघाट के पाल चौधरी वंश की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाले धन-कुबेर महात्मा कृष्णपान्ती जो एक समय चावल की गठरी सिर पर ढोकर बेचने के लिए ले जाते थे तथा सामान्य श्रमजीवी की, तरह बैल पर माल लाद कर बाज़ार में बेचते थे, सम्पत्ति के दिनों में वे मुक्तकण्ठ से इन बातों को स्वीकार करने में अपनी अप्रतिष्ठा नहीं समझते थे। वे अपनी बीती हुई दुर-वस्था का हाल प्रकट करना लज्जा का विषय नहीं समझते थे। शिक्षा पाने की उनके मन में इतनी उत्कट वासना थी कि जब उन्होंने देखा कि दरिद्रता के कारण पाठशाला में पढ़ना अस-म्भव है तब वे विद्वान् ब्राह्मणों की सेवा से प्रसन्न करके उनसे कुछ कुछ शास्त्रीय विषय की शिक्षा प्राप्त करने लगे। वे स्वयं लोगों से कहते थे कि—"मैं इस गाँव के विद्वान् ब्राह्मणों के घर जाकर उनकी सेवा करता था और उनसे ज्ञान की बातें सीखता था"।

बहुत लोगों की यह धारणा थी और अब भी कुछ कुछ है कि "परिश्रम करना दरिद्र, मज़दूर और बालकों ही के पक्ष में श्रेष्ठ है। यदि दरिद्र परिश्रम न करें तो उनका जीवन-निर्वाह कठिन हो जायगा और यदि बालक श्रम न करेंगे तो उन्हें विद्या-लाभ न होगा। किन्तु जो लोग धनी हैं उनके लिए परिश्रम करना

व्यवसाय-कौशल से करोड़ों रुपये पैदा किये। इनका वृहत् दिलर भवन इस समय हज़ारों मनुष्यों को भोजन दे रहा है। ये कर्मचारियों के रहने के लिए एक बहुत बड़ा स्वास्थ्यकर मकान, विद्यालय, खैराती दवाखाना, धर्म-भवन और कितने ही कार्यालय और उद्यान आदि स्थापित कर गये हैं। उन्होंने लोगों के उपकारार्थ ढेर का ढेर धन दान कर दिया था। उनमें सब गुणों से बढ़ कर विशेष गुण यह था कि धनकुबेर होने पर भी उनमें आलसी अमीरों की सी आराम-प्रियता, अध्ययनविमुखता और अहङ्कार आदि अवगुण छू तक भी न गये थे। उन्होंने अपने कोमल व्यवहार से क्या छोटे, क्या बड़े सभी को अपने अधीन कर लिया था। वे अपने इन अनेक गुणों के कारण कई एक राजकीय उपाधियों से विभूषित हुए थे।

जो होरेस ग्रीली जगद्विख्यात हुए थे, उन्हें जानते हो? वे कौन थे? वे निउ हैम्पशायर के पहाड़ी प्रदेश में एक अत्यन्त दरिद्र किसान के घर उत्पन्न हुए थे। मैं यहां उनकी उन्नत अवस्था का उल्लेख न कर उनकी प्रथम अवस्था का कुछ वृत्तान्त लिखना ही आवश्यक समझता हूँ। वे बाल्यकाल में दिन भर खेत का काम करके यथाशक्ति पिता की सहायता करते थे और रात में अपनी मां के पास बैठ कर पढ़ते थे। वे पढ़ने के लिए अड़ोस पड़ोस के लोगों से किताब मँगनी माँग लाते थे। दिया जलाने तक के लिए तेल न मिलता था, इसलिए वे जङ्गल

क्या इस भ्रान्ति को दूर करने के लिए यथेष्ट नहीं है? जापानी लोग जैसे परिश्रमशील श्रोर उद्यमी हैं यह प्रायः सभी पर प्रकट है, अतएव यहाँ जापान के इतिहास का उल्लेख करना बाहुल्य मात्र है। अमीर साहब अपनी नीति-निपुणता, श्रमशीलता, श्रोर वीरता आदि गुणों से पाश्चात्य देश-वासियों को भी चकित कर गये हैं। उन्होंने अपने बुढ़ापे में भी जिस परिश्रम, कर्तव्य-परायणता, सुशासन श्रोर प्रजाश्रों की भलाई का काम किया था, चिरकाल तक इतिहास में चमकता रहेगा। वे नित्य २४ घण्टों में सिर्फ़ पाँच छः घण्टे अपने दैहिक कामों में लगाते थे। शेष समय सामाजिक, धार्मिक श्रोर राजनैतिक कार्य्य तथा शास्त्रावलोकन में व्यतीत करते थे। उन्होंने अपने असाधारण उद्योग श्रोर नैतिक बल से इक्कीस वर्ष के अभ्यन्तर अज्ञानरूपी अन्धकार से ढके हुए अफ़ग़ानिस्तान को प्रकाशमान कर दिया। इनके कार्य-कैाशल से अफ़ग़ानिस्तान की शोभा पलट गई। जगद्विदित पर्यटन-कर्ता लिभिंग्रोन द्रव्य के अभाव से उच्चशिक्षा पाने की सुविधा न देख कर प्रति दिन बारह घण्टे के परिश्रम से जो पैसा कमाते थे उसमें कुछ कुछ बचाते थे, उसी के द्वारा उनका अभीष्ट सिद्ध हुआ।

सर टाइटस शल्ट एक दरिद्र किसान के पुत्र थे। इन्होंने बड़े कष्ट से बाल्यावस्था बिताई। जब वे युवा हुए तब शिल्प श्रोर वाणिज्य में प्रवृत्त हुए। इन्होंने अपने अनेक सद्गुण श्रोर

को यही शिक्षा मिलती है कि अनिवार्य इच्छा और असाधारण उद्योग से एक छोटा सा बालक भी ऋद्धिशाली हो सकता है।

जिन महात्मा लिप्टन की चाय संसार में सर्वत्र व्याप्त हो रही है जिन्होंने अनेकानेक कल-कारखाने स्थापित कर असंख्य नर-नारियों के भोजन-वस्त्र का अवलम्बन खड़ा कर दिया है। जो लोगों के उपकारार्थ बड़े उदार भाव से धन देकर राजा और राजमन्त्रियों के प्रीतिपात्र बने थे, तथा उच्च उपाधि से भूषित हुए थे, वे सर टीमस लिपटन ग्लासगो नगर के एक दरिद्र के सन्तान थे। वे ग्लासगो के एक दुकानदार के यहां पत्र-वाहक का काम करते थे और इसी के द्वारा वे अपने दरिद्र माँ-बाप का भरण-पोषण करते थे। वे अपने माता-पिता की दरिद्रता दूर करने के लिए अपनी जान तक दे देने को उद्यत थे। यह उच्चाभिलाषी पन्द्रह वर्ष का बालक मार्किन जाकर किसी कारखाने में काम करने लगा। कारखाने का काम करते करते और थोड़ी बहुत चीज़ों को खरीदते बेंचते वह व्यवसाय की सभी बातों में निपुण होगया। व्यापार-सम्बन्धी शिक्षा अच्छी तरह प्राप्त करके लिपटन वाणिज्य में प्रवृत्त हुए और उन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की। लिप्टन के उपदेश यही हैं—

(१) परिश्रम से कभी मुँह न मोड़ो।

(२) व्यवसाय में लोभवश साधुपथ का त्याग कर कभी असाधुता का काम न करो।

से लकड़ी ले आते थे और उसी को जला कर रोज़ रात को एकाग्र मन से पुस्तक पढ़ते थे। होरेस जब दस वर्ष के हुए तब उनके बाप का घर-द्वार, खेती-बारी आदि जो कुछ था सब नीलाम हो गया। गिरफ़ार होने के डर से उनके बाप दूसरी जगह भाग गये। होरेस को दुःख का अन्त न रहा पर तो भी उन्होंने पढ़ना नहीं छोड़ा। वे लकड़ी बेंच कर जो पैसा लाते थे उसी में से कुछ कुछ बचाते थे और उससे शेक्सपीयर तथा हेमेन्स का काव्यग्रन्थ ख़रीद कर पढ़ते थे। इस प्रकार कष्ट उठा कर उन्होंने विद्या-लाभ किया और अपने माँ-बाप, भाई-बहनों का कष्ट न देख किशोर अवस्था में ही छापाख़ाने की नौकरी कबूल कर ली। वे सब प्रकार के भोग-विलास की वासना को त्याग कर दिन रात अपनी उन्नति की चेष्टा में लगे रहते थे। छापेख़ाने में नौकरी करने के समय उनको दरिद्र वेश में देखकर छापाख़ाने के कितने ही अशिक्षित नव-युवक हँसते थे और उनको चिढ़ाने की अनेक चेष्टा करते थे। किन्तु वे ऐसे मनस्वी थे, जो उन लोगों के उपहास पर कुछ ध्यान न देकर स्थिरभाव से अपना काम करते थे और वे लोग जब इन्हें बहुत दुतकारते थे तब ये उसके उत्तर में बड़ी कोमलता से इतना ही कहते थे कि "नई पोशाक के लिए ऋणग्रस्त होने की अपेक्षा मेरे लिए पुराना कपड़ा पहनना अच्छा है।" होरेस इस तरह अपने ऊपर अनेक क्लेश उठाकर अपने माँ-बाप के पास ख़र्च के लिए रुपया भेजते थे। इनकी जीवनी से हम लोगों

हिरात भी तो पेड़ में नहीं फलते ! रत्न-प्रसविनी भारत-भूमि के शतांश के बराबर भी तो जापान में धन नहीं, जापान की भूमि ऐसी उपजाऊ भी तो नहीं । तब जापान इतना उन्नत कैसे हुआ ! कारण यह कि जापानी लोग सिर पर हाथ रख कर सोच करना नहीं जानते, केवल उद्योग करना जानते हैं । भाग्य के भरोसे न बैठ कर ये पुरुषार्थ करते हैं और अपनी उन्नति का केवल स्वप्नमात्र न देख उसके साधन में सर्वदा तत्पर रहते हैं । यदि कोई कहे कि जापान में एक भी मनुष्य अकर्मण्य किंवा विलास-प्रिय नहीं है तो यह अत्युक्ति न होगी । जापानी लोग परिश्रमी, कार्यकुशल, मितव्ययी और संचयशील हैं । जापान ने एशिया का आदर्श न ग्रहण कर सुदूरवर्ती अमेरिका और इंगलैंड जाकर अपने उपयुक्त आदर्शों को ढूँढ़ लिया और उन आदर्शों का अनुकरण करते करते स्वयं आदर्श बन गया । यह उसी साहस और उद्योग का फल है कि जापान इन दिनों प्रधान शक्तियों में गिना जा रहा है । जिस जापान में दस वर्ष के भीतर एक कपड़े की रफ़्नी दो लाख से डेढ़ करोड़ हो गई है, इसी से वहाँ की वाणिज्यवृद्धि का अनुमान किया जा सकता है । यदि भारत में कोई जाति वाणिज्य-कुशल है तो मारवाड़ी । मारवाड़ियों का वाणिज्य-विषयक-श्रम, कष्टसहिष्णुता, मितव्ययिता आदि सभी प्रशंसनीय हैं । ये लोग बालुकामय मारवाड़ देश के रहनेवाले हैं । यद्यपि मारवाड़ देश मरुभूमि होने के कारण मनुष्यों के

(३) काम छोटा हो या बड़ा, ख़ूब सोच समझ कर करो।

(४) जिस बात को तुमने अच्छी तरह बुद्धि और विवेचना के द्वारा सोच लिया है उसे तुम बेख़ौफ़ लोगों में प्रकट कर सकते हो। बिना सोचे किसी बात का विज्ञापन न दो।

(५) अधीन कर्मचारिगणों से इस कौशल से काम लो जिसमें वे तुम्हारे काम को अपना समझ कर करें। तुम्हारे कोमल व्यवहार से तुम पर प्रेम रक्खें और तुम्हारी निष्ठा देख कर कर्तव्यनिष्ठ होना सीखें।

(६) लोगों के चरित्र परखने की प्रवीणता प्राप्त करो। उस प्रवीणता से तुम सच्चे सुयोग कर्मचारी को नियुक्त करने में समर्थ हो सकोगे।

(७) निष्प्रयोजन किसी काम में प्रवृत्त न होओ। इसमें कुछ फल-लाभ न होगा। जो कोई उद्देश्य स्थिर करके व्यवसाय में प्रवृत्त होता और बराबर उसमें लगा रह कर साहस और अध्यवसाय के साथ धीरे धीरे अग्रसर होता है, उसका उद्देश्य अवश्य सिद्ध होता है।"

व्यक्ति विशेष की तरह जातीय आदर्श को भी सामने रख कर लोग अपने देश की उन्नति कर सकते हैं। जापानियों ने जो देखते ही देखते अपनी इतनी बड़ी उन्नति कर ली, इसका कारण क्या? वहाँ हीरे सोने की खान तो नहीं है? वहाँ जवा-

मितव्यय और संचय में मारवाड़ी, उद्योग और साहस में जापानी, तीक्ष्णबुद्धि और शिक्षा में बङ्गाली, कर्तव्यनिष्ठा में युरोपियन और वाणिज्य में मार्किन के बराबर हैं। ये लोग मुहर्रिरी आदि सामान्य नौकरी करके जातीय शक्ति का नाश करना नहीं चाहते। वाणिज्य ही इन लोगों के जीवन का प्रधान लक्ष्य है। भारतीय वाणिज्य समुद्र के मानो ये लोग कर्णधार हैं। इसी पारसी कुल में सर जमसेदजी जीजीभाई, सर दिनशा मानिकजी, सर मङ्गलदास नाथू भाई और वाणिज्यवीर तथा दानशील नसेरवांजी ताता का जन्म हुआ था। भारत के ५२ लाख भिखारियों में पारसीजाति का कोई भी व्यक्ति कहीं पाया जाता है? शिक्षा के साथ मिल कर व्यवसायबुद्धि और श्रमशीलता के साथ मिल कर उच्चाभिलाष ने पारसीजाति को धनसम्पन्न बना दिया है। कोई जाति हो, कोई समाज हो, या कोई व्यक्ति हो जो अध्यवसाय के साथ व्यवसाय करेगा वह ऋद्धिसाधन में सफलता प्राप्त करेहीगा। यदि मार्किन, जापान, इँङ्गलैंड और जर्मनी आदि उन्नतिशील देश अतिदूरस्थ होने के कारण अनुकरणीय न समझे जायँ, उन देशवासियों को कोई आदर्श न माने, तो भारत के ही अन्न, जल वायु से परिवर्द्धित शक्तिशाली पारसीजाति

के पास
रहते आँख
ईश्वर

रहने योग्य नहीं है, क्योंकि वहां के निवासियों को अन्न-जल का कष्ट और ग्रीष्म का प्रचण्ड उत्ताप विशेषरूप से सहना पड़ता है तथापि "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" इस कारण वह कष्टमय देश अब भी जनशून्य नहीं है। अब भी वह देश जन-सङ्कीर्ण हो रहा है। मारवाड़ी लोग इस दुःसह देश में जन्म ग्रहण कर वहां के जलवायु से परिवर्द्धित होकर अत्यन्त क्लेश-सहिष्णु और परिश्रमी होते हैं। आजकल उन लोगों ने अपनी जीविका की प्रशस्त खेती और ऋद्धि-प्राप्ति का मुख्य साधन वाणिज्य-व्यवसाय देश विदेश में सर्वत्र ही फैला दिया है। जो सब मारवाड़ी आज कलकत्ते के करोड़पती महाजनों में गिने जाते हैं, उनमें कितने ही जन्मस्थान से सिर्फ़ एक लोटा और एक डोरी मात्र पूँजी लेकर बङ्गदेश में आये थे, जो प्रारम्भ में वे कपड़े की गठरी या बर्तन आदि सिर पर लेकर गली गली में बेचते फिरते थे, जिनके पास एक कौड़ी भी पूँजी न थी, वही फेरी वाले धीरे धीरे श्रम, साहस और सञ्चयशीलता आदि गुणों से महाजन बन बैठे और करोड़ों का कारबार करने लगे। इस व्यापार-कौशल के साथ यदि उनमें शिक्षा, ज्ञान और सहृ-यता आदि गुण मिले होते, तो वे अवश्य भारत के अन्यान्य प्रदेशवासियों के आदर्श बन जाते। किन्तु भारत में एक जाति और ऋद्धिशाली है, जो हम लोगों की अवश्य अनुकरणीय है। यह भारत की प्रसिद्ध जाति पारसी है। पारसी लोग परिश्रम,

का आश्रयण करना उत्तम है। एक दम भोग में लिप्त होना ठीक नहीं, वैसे ही भजनानन्दी होकर भोजन के लिए घर घर भीख माँगना भी ठीक नहीं है। जो लोग दूरदर्शी हैं वे भोग और भजन दोनों पर समान दृष्टि रखते हैं। किन्तु जिनकी दोनों आँखें किसी एक ही विषय पर उलझ पड़ती हैं, जिनका मन किसी एक ही विषय में लग जाता है; जो सारी शक्ति को अपने किसी एक इष्ट विषय की प्राप्ति में ही खर्च कर डालते हैं वे संसार में कुछ और भी देखने, सुनने, कहने, सोचने, समझने और करने का विषय है—इसकी ख़बर तक नहीं रखते। उनकी यह निष्ठा, यह एकाग्रता, यह साधना उन्हें इष्ट वस्तु की प्राप्ति में समर्थ करती है सही, किन्तु वे सुख के मार्ग में काँटे ज़रूर बनती हैं। जो लोग किसी एक विषय के वशीभूत हो जाते हैं, वे सोते जागते उसी को सोचते हैं, उनका ध्यान अनुक्षण उसी पर रहता है। उन्हें भूख नहीं, प्यास नहीं, नींद नहीं, कुछ नहीं, है केवल हाथ में एक मात्र सितार; वे सितार से बढ़ कर कुछ नहीं समझते। सितार ही उनका सर्वस्व है। जो कवि हैं, वे दिन रात काव्य में ही डूबे रहते हैं, जो वैज्ञानिक हैं वे तत्त्व की जिज्ञासा और नई चीज़ों के खोज में ही अपने समस्त जीवन को बिता डालते हैं। जो कृपण हैं, वे सर्वदा एकाग्रमन से धन की पूजा में ही लगे रहते हैं। जो विलास-प्रिय हैं अर्थात् विषयी हैं, वे दिन रात भोग-विलास में ही मग्न रहते हैं। इन लोगों को

होता था उससे अपने परिवार और आश्रित विद्यार्थियों का भरण-पोषण करते थे। उनके वाणिज्य में कपड़े और चावल आदि की बिक्री भी जारी थी। इस व्यवसाय ने तारानाथ तर्क-वाचस्पति की साहित्यसेवा में या उनके पाण्डित्य में अथवा उनके महत्त्व में विघ्न पहुँचाया था ऐसा कहने का साहस किसे होगा? विद्वान् हो चाहे मूर्ख, व्यवसाय करने का अधिकार सभी को है। यदि वाणिज्य निन्द्य कर्म होता तो तारानाथ तर्क-वाचस्पति कभी इस वृत्ति का अवलम्बन नहीं करते।

एक बी० ए० परीक्षोत्तीर्ण विद्वान् की दुकानदारी

चौबीस परगना के अन्तर्गत बाँटुरा गाँव में १२६२ साल में स्वर्गीय भूतनाथ पाल का जन्म हुआ था। उनके पिता मङ्गल-चन्द्रपाल साधारण श्रेणी के गृहस्थ थे। उन्होंने एक मामूली मोदी की दुकान भी खोल रक्खी थी। किन्तु भूतनाथ के मामा युधिष्ठिर कोंच अतुल ऐश्वर्यशाली थे। उनके कई दुकानें थीं और कारबार भी खूब फैला हुआ था। जब भूतनाथ की उम्र ग्यारह बारह वर्ष की हुई तब उनके पिता का देहान्त हो गया। भूतनाथ को पितृहीन होते देख उनके मामा उन्हें और उनकी

और विषयों पर ध्यान देने का अवसर कहाँ ? किन्तु जो लोग मध्यवर्ती पथ के पथिक हैं वे सभी ओर समान दृष्टि रखते हैं, भुक्ति मुक्ति दोनों का अधिकार लाभ करते हैं। वे भुक्ति के लिए मुक्ति का त्याग नहीं करते और न मुक्ति के लिए भुक्ति पर छुरी फेरते हैं। बिना संयमी हुए कोई भुक्ति मुक्ति का अधिकारी नहीं हो सकता। संयम (जितेन्द्रियता) भुक्ति मुक्ति के पारस्परिक असमञ्जस को मिटा कर संयमी को समञ्जस के आसन पर बैठा कर भुक्ति मुक्ति का अधिकारी बना देता है। इसी संयम गुण से कितने ही लोग विद्वान् हो कर भी व्यवसायी होते हैं, वणिक् हो कर भी दानशील होते हैं, धनवान् हो कर भी कार्यक्षम होते हैं और कवि होकर भी व्यवहार-कुशल होते हैं। सुप्रसिद्ध पण्डित तारानाथ तर्कवाचस्पति अनेक शास्त्रों के विद्वान् थे। उन्होंने संस्कृत-कालेज में छः वर्ष पढ़ कर वाचस्पति की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद वे उसी कालेज में व्याकरण के प्रधान अध्यापक नियुक्त हुए। उन्होंने संस्कृत के बहुत से प्राचीन ग्रन्थ छपवाये। शब्दकल्पद्रुम के आधार पर उन्होंने एक वृहत् 'वाचस्पत्य अभिधान' कोष निर्माण कर के अपनी कीर्ति स्थापित की। इस ग्रन्थ के निर्माण में बारह वर्ष लगे थे और अस्सी हज़ार रुपया ख़र्च हुआ था। ये असाधारण विद्वान् तारानाथ जो वाणिज्य में लिप्त थे, इसे क्या सर्वसाधारण लोग विश्वास करेंगे? किन्तु वे व्यवसाय ज़रूर करते थे और उसके द्वारा जो लाभ

पसन्द नहीं करते। हमारी यही एकान्त इच्छा है कि अँग्रेज़ी पढ़े लिखे लोग भी व्यवसायी हों। हम तुम्हें दुकानदार बनाना चाहते हैं। भूतनाथ बाबू ने मामा की बात में सहमत होकर कोई काम देने की प्रार्थना की। उनके मामा ने पहले उन्हें अपने एक प्रवीण सन के व्यवसायी के पास काम सीखने के लिए भेजा और "चेल ऐंड पाल" नाम से एक सन का कारखाना खोल दिया। १२८९ साल में भूतनाथ बाबू एक और व्यक्ति को साथ ले कर्मक्षेत्र में प्रविष्ट हुए। उनके साथी का नाम था रासविहारी चेल। ये चेल भी कोंच महाशय के भानजे थे और उन्हीं के ख़र्च से बी० ए० तक अङ्गरेज़ी पढ़कर परीक्षोत्तीर्ण हुए थे। चेल और पाल दोनों की एक ही विद्या थी, एक ही व्यवसाय था और लाभांश भी बराबर ही था। तथापि भूतनाथ बाबू का श्रम और साहस प्रशंसनीय था। जो विद्यालय में सब छात्रों में प्रथम गिने जाते थे, जिन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से प्रत्येक पास पर वृत्ति पाई थी। उनका स्वभाव रासविहारी बाबू के स्वभाव से कैसे मिलेगा? भूतनाथ बाबू व्यवसाय के सभी कामों की अच्छी तरह देख भाल करने लगे। वे रासविहारी बाबू को आफ़िस की शीतल छाया और पंखे की हवा में बैठाये रख कर आप कड़ी धूप में इधर उधर घूम फिर कर काम करते थे। सवेरे उठ कर सन ख़रीदने में प्रवृत्त होते थे, दस बजे भोजन कर आफ़िस जाते थे और शाम तक सन की बिक्री करते थे। रात में अपने

माँ आदि सबको अपने घर ले आये। सृष्टिधर कोंच ने अपने भानजे के पढ़ने का प्रबन्ध कर दिया। ये कोंच महाशय ऐसे दयालु और परोपकारी थे कि जो दरिद्र बालक द्रव्य के अभाव से पढ़ नहीं सकते थे। उन्हें अपने पास से ख़र्च देकर पढ़ने का प्रबन्ध कर देते थे। वे व्यवसाय के द्वारा केवल धन उपार्जन करना ही नहीं जानते थे। वे उसका सद्व्यय करना भी जानते थे। भूतनाथ बाबू मामा के आश्रम में रह कर बी० ए० तक पढ़ गये। बी० ए० पास होने के बाद मामा का गलग्रह हो कर रहना उचित न समझ उनसे छिपे छिपे उद्योग करके वे कटक के रैभेन्स कालेज के एक अध्यापक नियुक्त हुए। वे डिप्टी मैजिष्ट्रेटी की परीक्षा में भी उत्तीर्ण हुए थे। किन्तु उनके मामा ने जब उनकी नौकरी की बात सुनी तब उन्होंने इसमें अपनी असम्मति प्रकट कर के कहा—"इस देश में अब पहले की तरह देशी लोगों के साथ व्यवसाय का सम्बन्ध नहीं रहा, अब व्यवसाय-सम्बन्धी सभी कारबार प्रायः अँगरेज़ों के ही साथ करना होता है। हमने जो तुम्हें बी० ए० तक पढ़ाया है सो व्यवसाय करने ही के लिए; नौकरी करने के लिए नहीं। पढ़े-लिखे लोगों को नौकरी करना हम अच्छा नहीं समझते, इस देश के लोग जो अँग्रेज़ी पढ़ कर वकील, बारिष्टर, जज, मैजिष्ट्रेट और डाक्टर होते हैं, यह छोटी नौकरी की अपेक्षा अच्छा है; किन्तु सच पूछो, तो हम इन ओहदों को भी हृदय से

'। ऐसे लोगों का जीवन उसी एक सौ रुपये के हेर फेर
ह जाता है। व्यवसाय में निरुत्साह न होना चाहिए। सात
में एक लाख रुपया घाटा हुआ है। इस दफ़ा ऐसा बड़ा
कारबार करो जिससे सात साल की हानि को एक साल के
से पूर्ति कर सको। कटिबद्ध हो कर जब व्यवसाय के
लग पड़ोगे तब अवश्य ही लाभ उठाओगे। कोई सहज ही
ड़ा आदमी नहीं बन जाता। बड़ा आदमी बनने के लिए
लाखों रुपये खर्च करने पड़ते हैं, लाभ की लाखों बातों से
ा लड़ाना पड़ता है, और लाखो विघ्नबाधाओं का सामना
पड़ता है। तुम लोग हताश मत हो। हम अब भी तुम्हारे
पण के लिए तैयार हैं। तुम व्यवसाय करते रहोगे तो इसी
ारी मान-मर्यादा की रक्षा होगी। जो लाख रुपये की
ई है, उसका सोच न करके भविष्य के लाभ का सोच
चाहिए। हमने तुम लोगो का सुन्दर शील स्वभाव
र ही ये बातें कही हैं। तुम लोगों में असाधुता का कोई
दीख नहीं पड़ता, इसलिए निश्चय है कि ईश्वर तुमको
मनोरथ करेंगे। जब तुम धन-प्राप्ति के लिए जी-जान
श्रम करोगे तब ईश्वर तुम्हें धन क्यों न देगा?

नाथ बाबू इस प्रकार मामा के मधुर उत्साहवर्धक उपदेश
ों से उत्साहित होकर फिर बड़ी तत्परता के साथ काम
गे। यद्यपि उन्हें फिर भी कई बार घाटा सहना पड़ा

घर पर बैठ कर जमाख़र्च का काग़ज़ ठीक करते थे। किन्तु इस प्रकार जी तोड़ परिश्रम करके भी भूतनाथ बाबू यशस्वी नहीं हुए। प्रतिवर्ष इस व्यवसाय में हानि होने लगी। मामा इनके अतुल सम्पत्तिशाली थे, इसी से उन्होंने हानि सहकर भी व्यवसाय का काम जारी रक्खा। वह इस आशा पर कि इस साल घाटा लगा तो लगा, अगले साल लाभ होगा। इसी आशा पर सात वर्ष तक सन का व्यवसाय होता रहा, पर सिवा हानि के किसी साल कुछ लाभ न हुआ। १२९५ साल में हिसाब करके देखा गया तो इस सात वर्ष के व्यवसाय में लगभग एक लाख रुपये के क्षति हुई। भूतनाथ बाबू उदास होकर बोले—"अब हम यह व्यवसाय न करेंगे, जब इसमें कुछ लाभ ही न होगा तब इस व्यवसाय से हमारा जीवन-निर्वाह कैसे होगा, हर साल घाटा सहने पर इतना रुपया हम कहाँ से ला कर देंगे"।

सृष्टिधर बाबू ने कहा—"घबराने की कोई बात नहीं। यह एक लाख रुपया हम तुम लोगों के इस सात वर्ष के सन के व्यवसाय की शिक्षा का ख़र्च समझते हैं। सोचने की बात है—जिस शिक्षा में एक लाख रुपया ख़र्च हुआ है, उस शिक्षा के द्वारा उस ख़र्च की अपेक्षा अवश्य ही विशेष लाभ होगा। जो लोग मन में यह ठान कर व्यवसाय करते हैं कि "इस एक सौ रुपये में लाभ हो चाहे हानि, इससे अधिक रुपया व्यवसाय में न लगा-

आयदाद कोई अन्याय से क्यों लेगा?" दरिद्र विद्यार्थियों के लिए इनके भंडार का द्वार बराबर खुला रहता था। वे विद्यार्थियों के रहने के लिए घर, भोजन, शयन और स्कूल की फीस आदि सभी बातों का अपनी तरफ़ से प्रबन्ध कर देते थे और बी० ए० तक पढ़ने का ख़र्च देते थे। विलास-प्रियता उनमें नाम मात्र को भी न थी। वे मद्यादि नशीले पदार्थों से बड़ी घृणा रखते थे। यहाँ तक कि हुक्के को भी हाथ से न छूते थे। वे तम्बोली समाज के संस्थापक थे। इस समाज से एक मासिक-पत्रिका निकलने लगी जो अब तक जीवित है। उस पत्रिका के और उक्त सभा के सम्पादक आप ही थे। सभा से प्रतिमास ५०) रुपया दरिद्रों में बाँटा जाता था। उन्होंने ८० हज़ार अशिक्षित सुप्तप्राय तम्बोलियों को जागृत किया, और वे लोग जो कई दलों में विभक्त थे, उन्हें तोड़ कर सबको एक में मिला दिया। अब सभी दल के तम्बोलियों को सभी दल में खाना-पीना और शादी की रस्म जारी है। जो पुरुषार्थशील हैं, वे जो कहते हैं उसे कर दिखाते हैं: भूतनाथ साधु जो इतना काम कर गये हैं, उसका कारण उनकी शिक्षा और सच्चरित्रता ही थी। हम लोगों को उनकी जीवनी से जो शिक्षायें मिलती हैं उनका विवरण संक्षेप से नीचे लिखा जाता है—

(१) भारत में उच्च-शिक्षा-प्राप्त व्यवसायियों की बड़ी आवश्यकता है। कृषि, शिल्प और वाणिज्य आदि का शिक्षा से सम्बन्ध होना मानो मणिकाञ्चन का मेल होना है।

लिए व्यवसाय-बुद्धि ही प्रधान गुण है। व्यवसाय-बुद्धि के बिना व्यवसाय चल नहीं सकता।

(८) व्यवसाय में तो एक बार सफलता प्राप्त होने पर लोगों की आँखें खुल जाती हैं, तब क्रमशः व्यापार बढ़ने लगता है।

(९) व्यवसायियों को हृदय का प्रौढ़ होना चाहिए। जो लोग व्यवसाय में प्रवृत्त होकर हानि होने के साथ हताश हो जाते हैं और लाभ होने पर फूल उठते हैं, ऐसे लोग व्यवसाय में पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। साहस, सहिष्णुता, आशा और उच्चाभिलाष ये चारों व्यवसाय के स्तम्भ हैं। इन्हीं स्तम्भों पर व्यवसाय की इमारत खड़ी है। ये पाये जितने ही सुदृढ़ रहेंगे व्यवसाय उतना ही सुदृढ़ और चिरस्थायी बना रहेगा। इन पायों में जहाँ एक भी कमज़ोर हुआ, तहाँ व्यवसाय की दशा शोचनीय हो चली। इसलिए इन पायों को कभी कमज़ोर न होने देना चाहिए।

(१०) जो लोग विलास-प्रिय हैं, निद्राहीन हैं, स्वार्थी हैं और व्यवसाय के कामों का भार दूसरों के हाथ में सौंप कर आप निश्चिन्त रहते हैं, उन्हें व्यवसाय का कोई फल हाथ नहीं आता।

(११) उच्चशिक्षा पाकर वकालत, डाक्टरी, प्रोफ़ेसरी और भी बड़ी बड़ी नौकरी करनी ही चाहिए यह कुछ आवश्यक नहीं है। उच्चशिक्षा लाभ करने का फल है मनुष्यत्व। जो यथार्थ में

(२) व्यवसाय में प्रवृत्त होने के पहले कुछ दिन व्यवसाय-सम्बन्धी कार्य्य की शिक्षा ज़रूर प्राप्त कर लेनी चाहिए।

(३) आलस्य, नैराश्य आदि अवगुणों को त्याग कर अपने वाणिज्य का काम अपने हाथ से करना चाहिए। जो दूसरों के ऊपर व्यवसाय का काम छोड़ते हैं उन्हें हानि सहनी पड़ती है।

(४) दैवयोग से यदि व्यवसाय में हानि हो तो भी हताश न होना चाहिए। उस हानि को हानि न समझ सतर्कता और कार्य-शिक्षा का व्यय मात्र समझना चाहिए। जो काम लाख रुपया ख़र्च करके सीखा जायगा, उस काम का पुरस्कार लाख से अवश्य ही अधिक मिलेगा।

(५) जो वणिक् शिक्षित और सच्चरित्र हैं, उन्हें वाणिज्य में विफलमनोरथ होने की सम्भावना नहीं। दैवयोग से कहीं उनका आयास विफल हुआ तो वे फिर अध्यवसायपूर्वक व्यवसाय में प्रवृत्त होजाते हैं।

(६) जो लोग ऋण के भरोसे व्यवसाय चलाते हैं, अथवा मितव्यय पर ध्यान नहीं रखते, वे सब बातों का सुबोता रहते भी अकृतकार्य होते हैं।

(७) जो लोग व्यवसाय-सम्बन्धी बातों से अनभिज्ञ हैं, वे प्रचुर मूलधन, उच्चशिक्षा और श्रमशक्ति आदि गुणों के रहते ही व्यवसाय में लाभ नहीं उठा सकते। जो जिस काम के लायक़ हों उन्हें उसी क़ाम में हाथ डालना चाहिए। व्यवसायियों के

सिद्धि-लाभ

'तुमने जो सत्कर्म करने का संकल्प किया है उसे सिद्ध करो बिना साधना से कोई काम सिद्ध नहीं होता"।

सिद्धि का कोई एक निर्धारित आदर्श नहीं है। भक्त को आराध्य, प्रेमिक को प्रेमपात्र, ज्ञानेच्छु को ज्ञान, मानाभिलाषी को सम्मान, कृपण को धन, और योद्धा को विजय मिल जाने पर सिद्धि-लाभ होता है। अभिप्राय यह कि जो लोग जो चाहते हैं, उन्हें यदि वह मिल जाय तो उनके लिए वही सिद्धि-लाभ कहलावेगा। यहाँ इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि सभी व्यक्ति जो चाहते हैं, क्या उन्हें वह मिल जाता है? दरिद्र लोग धन-सम्पत्ति चाहते हैं पर सभी दरिद्र तो धन नहीं पाते। कृष्णपान्ती तो दरिद्र थे उन्हें उतना अधिक धन कैसे मिला? कारण यह कि उनकी वासना के साथ साधना भी थी। जिनके पास यह साधना नहीं, वे सिद्धि-लाभ करने में समर्थ नहीं होते। योगी लोग शुद्ध साधना के बल से ही सिद्धि-लाभ करते हैं। विद्यार्थिगण जो बड़ी बड़ी परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं वह किस बल से? इसी साधना-बल से। जिन्हें साधना का अभाव है वहीं अकृतकार्य होते हैं। इसी से कहा गया है—"साधकः सिद्धिमाप्नुयात्"। संसार में जितने लोग हैं सब अपने किसी न किसी काम की धुन में ज़रूर लगे रहते हैं। बिना उद्देश्य का

मनुष्य है वही मनुष्यों का उपकार करता है। शिक्षित व्यक्ति जो काम करेगा, मूर्ख की अपेक्षा अवश्य ही अच्छा करेगा। अतएव शिक्षित लोगों के द्वारा सिद्धि-लाभ की विशेष सम्भावना है। कितने ही महाजन भूतनाथ बाबू से बढ़कर धनवान हुए हैं और हैं, किन्तु समाज को जितना लाभ इन बी० ए० परीक्षोत्तीर्ण एक दूकानदार से पहुँचा उतना किसी और से नहीं। कितने ही अशिक्षित महाजन करोड़ों रुपये का कारबार कर रहे हैं और लाखों रुपया दान करके अपनी उदारता से मानों दाता कर्ण को भी लज्जा रहे हैं किन्तु उस दान से देश का क्या उपकार होता है, यह हम नहीं जानते। इसी भारत में एक ताता भी हो गये हैं, जिनका नाम क्या स्वदेश, क्या विदेश, सर्वत्र विख्यात है। कौन उनके नाम से परिचित नहीं है? ताता का ही नाम इतना मशहूर क्यों हुआ? कारण यह कि व्यवसाय-बुद्धि ने उच्चशिक्षा के साथ मिल कर उन्हें वाणिज्य में सफलता प्रदान कर लोगों में प्रसिद्ध कर दिया और उनके हाथ से मनुष्योचित अनेक अच्छे काम कराये। जिससे सर्वसाधारण जन ताता को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे।

किन्तु जीवन के शेषकाल में उन व्यक्तियों को यह कहते भी सुना गया है कि—"हाय, हमारा जीवन व्यर्थ हुआ, हमने मनुष्य-जन्म लेकर क्या किया ?" उनके मुँह से यह बात क्यों नहीं निकलती कि "हमारा जीवन सफल हुआ, हमारा जन्म सार्थक हुआ"। इष्ट-सिद्धि-लाभ कर के भी जब कितनों ही को इस प्रकार अनुताप करते सुना जाता है तब जीवन की सफलता और विफलता के सम्बन्ध में अवश्यही कोई गूढ़ रहस्य है, इसे स्वीकार करना होगा। यह रहस्य जीवन के उद्देश्य से बाहर की बात नहीं है, वह भी उद्देश्य के अन्तर्गत ही है। क्या धन-धान्य से घर भरने, विश्वविद्यालय की उच्चतम परीक्षा पास करने, वक्तृता-बल से हज़ारों मनुष्यों को मुग्ध कर देने अथवा स्वास्थ्य-पूर्ण सुन्दर शरीर पाकर अपने वंश की मर्यादा बढ़ाने ही से जीवन का उद्देश्य पूरा हो जाता है? नहीं, जीवन का मुख्य उद्देश्य इन बातों से कहीं बड़ा है। जिस उद्देश्य को पूरा करके मनुष्य यथार्थ में मनुष्य* कहलाने योग्य होता है और लोगों में कभी कभी देवता कहलाने का भी अधिकार प्राप्त करता है वही जीवन का श्रेष्ठ उद्देश्य है। जो जीवन के इस महान् उद्देश्य को पूरा करते हैं, वे यह कहने का भी साहस कर सकते हैं

* मेरे बनाये "चरित्रगठन" में 'मनुष्यता' शीर्षक प्रबन्ध देखने योग्य है। ग्रन्थकर्ता

जीवन किसी काम का नहीं। जब उद्देश्य नहीं तब फिर साधना कैसी? उद्देश्यहीन लोगों का जीवन भारवत् प्रतीत होता है, अतएव वे अधिक दिन जीवन धारण नहीं कर सकते। अच्छा या बुरा जीवन का कोई एक उद्देश्य अवश्य होना चाहिए। उद्देश्य ही जीवन का अवलम्ब है। निरवलम्ब जीवन कितने दिन ठहर सकता है? बुद्ध, शङ्कराचार्य, चैतन्य देव, नानक, आदि महात्माओं का जीवन उद्देश्यहीन न था। राममोहन, विद्या-सागर, भूदेव और मधुसूदन आदि जितने सुप्रसिद्ध पुरुष हो गये हैं उन लोगों का भी अपना अपना एक उद्देश्य था। रघुनाथ, विश्वनाथ आदि डकैत भी उद्देश्यरहित न थे। सभी लोग अपने उद्देश्य या आदर्श को गुप्त रखते हैं, साधना के द्वारा वह आप से आप प्रकट हो जाता है। साधना का मूल्य सिद्धि के अनुसार निरूपित होता है और साधना के अनुरूप ही सिद्धि प्राप्त होती है। जिनकी साधना अच्छी है वे अच्छे साधकों में गिने जाते हैं। छोटा, बड़ा, कायर, वीर, कृपण, उदार, मूर्ख और ज्ञानी; ये सभी अपनी अपनी साधना से सम्बन्ध रखते हैं। मनुष्य का जीवन ही साधनामय है। भेद इतना ही है कि कोई अच्छी साधना करके मीठा फल चखता है और कोई बुरी साधना कर के विषमय फल पाता है। ऐसा भी तो देखा गया है कि जो

में अधिक अधिक अभिलाष करते हैं और

कर प्रायः सारी वासनायें भी पूरी होती हैं,

छोटा कोई फलने वाला, कोई फूलने वाला, कोई हरा भरा, और कोई सूखा सा अर्थात् सभी पेड़-पौदे उद्यान की शोभा बढ़ाने में समर्थ नहीं होते। किन्तु वह वृक्षलतामय उद्यान यदि दर्शकों के नेत्र को तृप्त कर सके, तो सभी लोग उद्यान को सुन्दर कहेंगे। मनुष्य का जीवन भी उद्यान के समान है। यदि अल्प अवस्था से ही मनुष्य अपने जीवन-उद्यान को इस तरह से सजावें जिसमें वह सभी को आनन्दप्रद हो और उसकी छाया, फल तथा फूलों से सभी लाभ उठावें और उसको आदर्श मान कर सभी लोग अपने जीवन-उद्यान को सजाने का अभिलाप करें तो जीवन की अवश्य सफलता या सार्थकता है।

मनुष्य को पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। केवल आमोद-प्रमोद या हास्य-परिहास करके ही कोई सुखी नहीं हो सकता। भोग-विलास जीवन के चिरसंगी होकर भी बुढापे में सुखदायक नहीं होते। किन्तु साहित्य, सांख्य, वेदान्त और मीमांसा आदि शास्त्रों का विचार नित्य संगी होकर मृत्यु समय तक सुख, शान्ति और आनन्द देता है। जिस धनी को धन से बढ़ कर कुछ प्रिय नहीं, धन-वृद्धि के अतिरिक्त जिसे दूसरा कोई आनन्द नहीं उस व्यक्ति के जीवन को जब बुढ़ापा आ घेरता है तब उसका मन धन से उचट जाता है; तब उसे वह धन आनन्द-प्रद नहीं होता। मनुष्ययोनि में जन्म लेकर क्या हानि-लाभ की बातों में ही जीवन को बिता डालना चाहिए? क्या मनुष्यता

कि—"हमारा जन्म ऐसा सार्थक हुआ, या हम अपने जीवन को सार्थक कर सके"।

अपने किसी विशेष विषय में कृतकार्य होने की अपेक्षा सर्व साधारण के हितकर कामों में सफल-प्रयत्न होना अधिक श्रेष्ठ है। जो लोग जन-समुदाय के कामों में सफलता प्राप्त करते हैं, वे अन्यान्य उद्देशों में अकृतकार्य होने पर भी अपने जीवन को सफल समझते हैं। और लोग भी ऐसे पुरुषों के जीवन की सराहना करते हैं। किन्तु जो लोग स्वार्थ-सम्बन्धी अनेक विषयों में सिद्धि-लाभ करते हैं उनसे यदि परोपकार का कोई काम सिद्ध न हो सका, तो वे अपने जीवन की बात को सोच कर अवश्य अपने ऊपर घृणा करेंगे। और दूसरा भी कोई उनके जीवन को अनुकरणीय न समझेगा, बल्कि यही कहेगा कि वे ज़िन्दगी भर अपने ही कामों के पीछे हाय हाय करते रहे। भलाई का एक भी काम उनसे न बन पड़ा"।

जो लोग अपने रहस्यमय जीवन के अन्तर्गत धर्म और शक्ति के ऊपर दृष्टि न देकर और समाज के साथ कोई सम्पर्क न रख कर अपने जीवन को स्वार्थ-साधन के पीछे बिता डालते हैं, वे लोग अन्तकाल में अपने बहुकष्टार्जित धन को सामने रख कर भी सुख नहीं पाते और अपने को सर्वजनत्यक्त, त सहानुभूतिरहित देखते हैं। किसी विद्वान् का कथन है कि-"उद्यान के सभी पेड़-पौदे बराबर नहीं होते। कोई लम्बा, को

आती। स्वार्थ से सम्बन्ध रखने वाले कामों में जीवन बिताने से जीवन की सार्थकता नहीं होती। जीवन की सार्थकता तभी होती है जब समाज के उपकार का कोई काम किया जाय। इस लिए जीवन के अन्यान्य उद्देश्यों के साथ समाजहितसाधन का ध्यान रखना भी बहुत ज़रूरी है। सभी लोग बाल्यकाल से ही जब समाजहित साधन को अपने जीवन का एक प्रधान उद्देश्य समझेंगे तब उसकी सिद्धि के लिए वे साधना भी अवश्य करेंगे। जो समय पर चूकते हैं वही पीछे पछताते हैं। जिनसे अपने जीवन में कोई अच्छा काम करते नहीं बनता, वही बुढ़ापे में यह कह कर आंसू बहाते हैं कि "हाय हमने जन्म लेकर क्या किया? इस दुर्लभ मनुष्य-जीवन को हमने व्यर्थ ही बिता दिया।"

[illegible] [illegible] है कि [illegible] [illegible] और [illegible]
[illegible] और [illegible] [illegible] अपने जीवन में
[illegible] ? क्या मनुष्य-जीवन की सृष्टि केवल [illegible] के
लिए, [illegible] के लिए, केवल अपने शरीर को सुख
देने ही के लिए हुई है ? क्या जीवन का और कोई दूसरा उद्देश्य
नहीं है ? यह बात [illegible] ही कही जा सकती है कि मनुष्य-जीवन
का उद्देश्य बहुत बड़ा है । मनुष्यों का जैसा यह शरीर है
वैसा ही उनके मन और आत्मा भी हैं । क्या वे शारीरिक सुख,
आयु, बुद्धि और आरोग्य मात्र से ही सन्तुष्ट होंगे ? मनुष्य जैसे
शरीर को सुखी रखने की चेष्टा करते हैं वैसे ही उन्हें मन और
आत्मा को भी तृप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए । मनुष्य को
अपने मन और आत्मा को सुखी करने के लिए धर्म और ज्ञान की
साधना नितान्त आवश्यक है । जैसे धर्म की साधना से मन को
सुख मिलता है वैसे ही ज्ञान की साधना से आत्मा की तृप्ति
होती है । केवल प्रचुर धन की प्राप्ति से ही कोई मन और आत्मा
को सच्चा सुख नहीं दे सकता । जो लोग उच्चशिक्षा, शिल्प,
साहित्य, दर्शन और विज्ञान की बातों में निपुणता प्राप्त कर
गौरवान्वित होगये हैं, उन लोगों के सम्मान में स्मारकरूप
उनकी प्रतिमूर्ति स्थान स्थान में देखी जाती है । किन्तु जिन लोगों
ने केवल धन पैदा करने ही के पीछे अपना सारा जीवन बिता
दिया है, उन लोगों की प्रतिमूर्ति कहीं देखने सुनने में नहीं

सातवाँ अध्याय

सिद्धि का गुप्त मन्त्र

रामधन बाबू एक प्रसिद्ध महाजन थे। ये बड़े ही उदार और सज्जन थे। इनके अवैतनिक विद्यालय में इन्हीं के खर्चे से एक विद्यार्थी, जिसका नाम शचीन्द्र था, पढ़ता था। रामधन बाबू इसे मातृ-पितृ-हीन जान कर और इसका सुन्दर स्वभाव देख कर इस पर बड़ी दया रखते थे। शचीन्द्र दरिद्र होने पर भी उन्नाभिलाषी और सुयोगग्राही था। एक दिन वह रामधन बाबू की बैठक में गया। वहाँ उसकी दृष्टि एक नोटबुक पर पड़ी। उसकी पीठ पर बड़े बड़े मोटे अक्षरों में लिखा था—"नित्य सङ्गी"। उसके नीचे छोटे छोटे अक्षरों में लिखा था—"जिसके हाथ पर यह नोटबुक पड़े वह इसे एकबार आदि से अन्त तक पढ़ जाय।" शचीन्द्र बैठकर उस नोटबुक का पन्ना उलटने लगा। दो चार पन्ने उलटने के बाद उसने देखा कि लाल रोशनाई में बड़े बड़े अक्षरों में एक पन्ने के शीर्षस्थान में लिखा है —"सिद्धि का गुप्त मन्त्र"। शचीन्द्र ने उसके नीचे महाजन के हाथ की लिखी हुई कितनी ही उपदेश की बातें देखीं जो उसे बहुत पसन्द

देखने का न हो। कैसा ही साधारण से साधारण काम क्यों न हो उसकी देख रेख आपही करना ठीक है। जब अपने हाथ से कोई काम करोगे तभी सिद्धि-लाभ करोगे। जो नाव खेना जानते हैं, वे बिना कर्णधार (मांझी) के भी नाव को किनारे लगा सकते हैं।

(८) जो काम करना हो उसे खूब सफ़ाई से करो। जिस में लोग तुम्हारे काम की तारीफ़ करें। यदि रास्ते में झाड़ू देना है तो इस तरह झाड़ू दो जिसमें वैसा साफ रास्ता दूसरा दिखाई न दे।

(९) जब तक काम सिद्ध न हो तब तक जी-जान से उस में लगे रहो। जितनी ही तीव्र साधना करोगे उतनी ही शीघ्र सफलता प्राप्त होगी।

(१०) हँसी खेल में समय को व्यर्थ नष्ट न करो। कितनेही लोग युवापन में अपने अमूल्य समय और धन को भोग-विलास में बरबाद करके सभ्य मण्डली में मुँह दिखलाने योग्य भी [illegible] हैं।

[illegible]) जिसका लक्ष्य सबसे ऊपर है, वह कुछ दिनों में सब [illegible] बन कर उच्च आसन का अधिकारी होता है।

[illegible]) जो लोग सीधी सड़क छोड़ कर टेढ़ी राह से चलते [illegible] को छोड़ कर असम्भव की तरफ़ दौड़ते हैं, उन लोगों

(१५) जिनका स्वभाव अच्छा है, जिनकी सूझ अच्छी है, वे थोड़ी पूँजी से भी बहुत धन प्राप्त कर सकते हैं। बङ्गदेश के एक सच्चरित्र पुरुष ने एक अधेली से कई लाख रुपये पैदा किये। मार्किन के सुप्रसिद्ध महाजन रसेलसेज के पास क्या पूँजी थी? किन्तु उन्होंने अपनी सच्चरित्रता से तीस करोड़ रुपया जमा कर लिया।

(१६) जिसने कम से कम ६०००) रुपया जमा कर लिया है, समझना चाहिए कि वह लक्ष्मीलाभ के पथ में दूर तक अग्रसर हो चुका है। छः हज़ार रुपया कुछ अधिक है यह नहीं, किन्तु इन रुपयों के जमा करने में जो उसे अध्यवसाय करना पड़ा है, जो मितव्ययिता का अभ्यास करना पड़ा है वही उस सञ्चयकारी को धनप्राप्ति की साधना में सिद्धि प्रदान करेगा।

(१७) व्यवसाय-बुद्धि या महाजनी कारबार का कौशल लोगों को एक दिन में प्राप्त नहीं हो सकता। न वह केवल [illegible]सिक तर्क-वितर्क से, न छोटे ख़याल से, न क्षणिक उत्तेजना [illegible]हीं प्राप्त हो सकता है। किन्तु सावधानीपूर्वक क्रमशः महा[illegible]ी कारबार करते ही करते उसका अभ्यास होता है। जब [illegible]अभ्यास के द्वारा वाणिज्य-कौशल प्राप्त नहीं होता, तब तक [illegible] का रास्ता नहीं खुलता।

(१८) तुम्हें क्या करना होगा, यह बुद्धि बतला देगी; पर कैसे तरह करना चाहिए यह कौशल बतलावेगा। बुद्धि

लोगों के पास आ खड़ा होता है। यदि तुम सम्मान चाहते हो तो प्रशंसा का काम करो. जब तुम अच्छा काम करोगे तो बिना कहे ही लोग तुम्हारा सम्मान करेंगे।

शचीन्द्र के घर का सुप्रबन्ध

"जिस घर में अपव्यय नहीं होता, उस घर में आवश्यक वस्तुओं का अभाव नहीं होता"।

"अर्थाभाव और अनिश्चित आय के भरोसे ऋण लेकर खर्च करना मूर्खता है। गृहस्थों को ऐसा कभी न करना चाहिए"।

"गृहिणी को चाहिए कि जो घर का खर्च अनावश्यक जान पड़े, उसे रोक दे"।

"जो काम हम स्वयं कर सकते हैं, उसके लिए दूसरों का सहारा लेना उचित नहीं"।

एक महाजन जो फेरी करते करते अपने व्यवसाय-कौशल से करोड़पती हो गये थे, कभी कभी नीतिनिपुण रामधन बाबू से मिलने आते थे। रामधन बाबू से उन्हें हार्दिक प्रेम था। शचीन्द्र का विनय और सुन्दर स्वभाव देख कर वे महाजन उस पर बड़े ही प्रसन्न थे। जब वे कभी रामधन बाबू के यहाँ आते थे तब शचीन्द्र की ज़रूर खोज करते थे और उसके परोक्ष

में रामधन बाबू से उसके शील स्वभाव की प्रशंसा करते थे। शचीन्द्र अब बालक नहीं है। युवत्व में पदार्पण कर चुका है। रामधन बाबू को शचीन्द्र के व्याह की चिन्ता बढ़ने लगी। उनकी प्रबल इच्छा थी कि शचीन्द्र का विवाह उनके सामने हो जाय। यद्यपि अपनी दरिद्रता के कारण शचीन्द्र व्याह करना नहीं चाहता था तथापि रामधन बाबू के आग्रह से वह विवाह करने के हेतु बाध्य हुआ।

रामधन बाबू ने महाजनी करके यथेष्ट धन अर्जन किया है सत्कर्म में मुक्तहस्त से प्रचुरधन दान करके उदारता दिखलाई है इस पर भी उनके पास पूर्ण रुपया जमा है। रामधन बाबू अप सद्व्यवहार और साधुता से सभी लोगों के प्रिय बने थे। सर्व उनका आदर होता था। सुशिक्षित शिष्ट लोगों में जितने गुण होने चाहिएँ, सभी उनमें थे। किन्तु जैसे चन्द्रमा में लाञ्छना है वैसे ही इनमें भी एक भारी दोष रह गया था। वह यह कि सन्तान गणों की शिक्षा के प्रति उदासीनता और उनके चरित्र-सुधार की उपेक्षा। रामधन बाबू ने सभी कामों में अपने बुद्धिबल से काम लिया किन्तु इस विषय में वे अन्यान्य व्यवसायी महाजनों की तरह मन्द बने रहे। उन्होंने इस बात पर कभी विचार न किया कि वे जो इतना अतुल धन रखते जाते हैं वह क्या होगा? उनके चरित्रहीन, अल्पशिक्षित, व्यवसायबुद्धिरहित पुत्र दो ही दिन में उनके उपार्जित धन को उड़ा देंगे, इस पर तो उन्हें एक बार

सम्पन्न होता है। शचीन्द्र सादा भोजन और साधारण वस्त्र के अतिरिक्त और ख़र्च को आवश्यक नहीं समझते थे। घर के सभी अभावों का दूर करना उनके सामर्थ्य से बाहर की बात थी। यदि वे दूरदर्शी न होते, अपनी अवस्था के अनुसार ख़र्च करना न जानते तो जीवन भर ऋणी बन कर कष्ट उठाते। जिन कामों को अपने हाथ से करने में कितने ही २०) २५) वेतन पानेवाले बाबू लोग संकुचित होते हैं उन्हें ये अपने हाथ से कर लेते थे। वे ख़ुद बाज़ार से जा कर सौदा ख़रीद लाते थे। चार पैसे की तरकारी लाने के लिए दो पैसे मज़दूर को न देकर स्वयं ले आते थे। घर के सभी काम उनकी गृहिणी स्वयं सम्भाल लेती थी। बच्चों के पहनने के कपड़े घर ही में सी लिये जाते थे। शचीन्द्र का मुख्य सिद्धान्त यही था कि वे ऋण लेकर धनी का अनुकरण कभी न करेंगे। वे अपनी अवस्था पर बराबर ध्यान रखते थे। शौक़ीनी उन्हें जी से पसन्द न थी। उनकी स्त्री भी ऐसी समझदार और सुशीला थी कि दूसरी स्त्रियों के बहुमूल्य वस्त्र या भूषण देख कर कभी अपने साधारण वस्त्र या भूषण पर खेद प्रकट न करती और न कभी इनके लिए अपने पति को चिन्ता में डालती थी। शचीन्द्र सभी चीज़ नक़द दाम देकर ख़रीदते थे, इससे उन्हें चीज़ सस्ती और अच्छी मिलती थी। वे कोई चीज़ कभी उधार नहीं लेते थे। न वे अपने लड़कों के लिए रोज़ रोज़ नया खिलौना मोल लेते थे। शचीन्द्र के घर में मादक पदार्थों का व्यवहार न था।

यह थी कि उन पुस्तकों में एक भी बुरा उपन्यास या नाटक न था। जितनी पुस्तकें थीं, सभी काम की थीं। ऐसी एक भी पुस्तक न थी जिसके पढ़ने से चित्त पर बुरा असर पैदा हो। उपन्यास-नाटकों का एक दम अभाव न था, किन्तु वही उपन्यास-नाटक थे जिनका उद्देश्य अच्छा था। शचीन्द्र की स्त्री पढ़ी लिखी थी। वह अपने हाथ से सब पुस्तकों के सजा कर आलमारी में रखती थी और उसने संख्या-निर्देशपूर्वक एक सूचीपत्र भी तैयार कर लिया था।

एक व्यवसाय-कुशल पक्का दुकानदार जिस तरह अपने व्यवसाय के प्रत्येक विषय से परिचित रहता है और स्वयं सब कामों को देखता है उसी तरह शचीन्द्र एक पक्का गृहस्थ बनकर और उनकी स्त्री एक सुघर घरनी बनकर दोनों घर के सभी कामों पर सर्वदा ध्यान रखते थे। बाहर का काम शचीन्द्र सँभालते और भीतर का काम उनकी स्त्री सँभालती थी। शचीन्द्र ने छोटे छोटे बालक-बालिकाओं से भी उनकी शक्ति के अनुसार हलका काम लेते थे। वे अपने सन्तान के अपरिश्रमी कर भाग्यहीन बनाना नहीं चाहते थे। शचीन्द्र की स्त्री कार्य-कुशला थी कि घर के सभी काम यथा—घर का ना बुहारना, बर्तन साफ़ रखना, रसोई बनाना, बच्चों का पालन आदि अकेली कर लेती थी, केवल वे दोनों छोटे उसके सहायक थे। वे उसकी आज्ञा पालन के लिए

शचीन्द्र को शायद ही कभी तरकारी ख़रीदने की ज़रूरत पड़ती थी क्योंकि उन्होंने अपने घर के पास की ज़मीन में तरह तरह के फल फूल, साग भाजी लगा रक्खी थी। उनकी गृहिणी उन सब पेड़ों की बड़ी हिफ़ाज़त करती थी। उससे गृहस्थी के कितने ही काम चल जाते थे। किसी किसी घर में तरकारी ही के पीछे न मालूम महीने में कितना ख़र्च हो जाता है। जब तक पाँच तरह की तरकारियाँ आगे न आवें तब तक कितने ही लोगों का पेट ही नहीं भरता। किन्तु शचीन्द्र भोजन का उद्देश्य केवल क्षुधा का निवारणमात्र समझते थे। वे जिह्वा की तृप्ति के लिए विविध सुस्वादु तरकारियों की अपेक्षा भूख लगने पर भर पेट स्वच्छ भोजन कर लेने ही को यथेष्ट समझते थे। उन्होंने अपने घर के सभी लोगों में थोड़ा थोड़ा काम बाँट दिया था, जिसे वे लोग बड़े उत्साह से करते थे। बिना परिश्रम के कोई काम पूरा नहीं होता, अतएव परिश्रम करने से उनके घर के सभी लोगों का स्वास्थ्य ठीक रहता था। जो लोग परिश्रम करते हैं, उन्हें भूख लगती है, खाना अच्छी तरह हज़म होता है, और नींद अच्छी आती है। परिश्रमी लोगों को प्रायः वैद्य का विशेष प्रयोजन नहीं पड़ता। इसीसे शचीन्द्र को भी प्रायः कभी डाक्टर को फीस देने का प्रसङ्ग न आता था।

शचीन्द्र को पुस्तक संग्रह करने की विशेष अभिरुचि थी। धीरे धीरे उन्होंने बहुत पुस्तकों का संग्रह कर लिया। विशेषता

पालन", "स्वास्थ्य-रक्षा", "शिशुपालन", "स्त्रीशिक्षा", "गार्हस्थ्य धर्म" आदि पुस्तकों के उपदेशों का यथासाध्य पालन करती थीं। स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियम सुखसाध्य होने पर भी कितने ही घरों में पालित नहीं होता। इसका एक मात्र कारण आलस्य है। शचीन्द्र के घर में कोई आलसी न था। इसीसे उनके घर का एक भी काम बिगड़ने न पाता था।

शचीन्द्र के घर में जैसा शान्तिभाव छाया रहता था वैसा किसी को कहीं देखने में न आता था। आपस में लड़ना-झगड़ना कैसा होता है—यह शचीन्द्र के घर में कोई न जानता था। स्वप्न में भी कभी किसी के साथ कोई विवाद न करता था। शचीन्द्र घर का जो प्रबन्ध करना चाहते थे, उसमें उनकी धर्मपत्नी कभी अनिच्छा प्रकट न करती थीं। किसी किसी विषय में तो दोनों मिलकर विचार करके कोई एक बात स्थिर करलेते थे। उनकी स्त्री अबूझ की तरह कभी उनसे कोई अनुचित अनुरोध करके उनका जी नहीं दुखाती थी। इस कारण उनके घर में सर्वदा आनन्द ही आनन्द रहा करता था। थोड़े आय में इतने बड़े गृहस्थाश्रम को सुख शांतिपूर्वक चलाना शचीन्द्र और उनकी धर्मपत्नी के सुप्रबन्ध का ही फल समझना चाहिए।

चारों तरफ़ दौड़ते फिरते थे। जब कभी उनसे कोई चीज़ लाने या कोई और ही काम करने के लिए कहा जाता था तब वे मारे ख़ुशी के उछल पड़ते थे। जिस दिन वे कुछ अपराध करते थे, उस दिन उनसे कोई काम न लिया जाता था। यही उनकी भारी सज़ा थी। इस सज़ा से जो उन बालकों के मन में मर्मान्तिक क्लेश होता था वह उनके सूखे मुँह और आँसू भरी आँखों से अच्छी तरह विदित होता था। माता-पिता के आज्ञापालन में इस प्रकार अभ्यस्त होकर और इस प्रकार हँसी ख़ुशी से थोड़ा थोड़ा परिश्रम करके वे बालक विना औषधादि सेवन से ही तन्दुरुस्त रहने लगे। खुली हवा में इधर उधर दौड़ धूप करने से उन बालकों का स्वास्थ्य ऐसा अच्छा बना रहता था कि कभी सिर में दर्द तक न होता था। ये बालक हमेशा सर्दी, (ज़ुकाम) खाँसी, ज्वर और पेट-पीड़ा आदि रोगों से व्यथित होकर अपने माँ-बाप को तकलीफ़ नहीं देते थे।

गृहिणी के सुप्रबन्ध से शचीन्द्र के घर के सभी काम बड़ी सफ़ाई से होते थे। हरेक चीज़ ठिकाने के साथ रक्खी रहती थी, घर की कोई चीज़ मैली या गन्दी न होने पाती थी। कपड़े फट जाने पर व्यवहार में लाये जाते थे, पर वे मैले न होने पाते थे। उनकी गृहिणी सर्वदा यही चाहती थी कि मैला कपड़ा उसके घर में कोई न पहने। स्नान, भोजन और शयन आदि सभी काम समय के अनुसार होते थे। शचीन्द्र की स्त्री "शरीर

आठवाँ अध्याय

महाजन के साथ शचीन्द्र का पत्र-व्यवहार

यद्यपि शचीन्द्र नौकरी करके भी अपनी उन्नति कर रहे थे, तथापि उनके उच्च अभिलाष ने उन्हें नौकरी ही में सारा जीवन बिता देने का परामर्श न दिया। वे अपने नियत काम से छुट्टी पाकर प्रतिदिन एक महाजन की कोठी में महाजनी कारबार सीखने के लिए जाते थे। उन्होंने यत्न-पूर्वक वाणिज्य-सम्बन्धी शिक्षा में मन लगाया। धीरे धीरे वे वाणिज्य की सभी बातों से परिचित हो गये। किन्तु अधिक परिश्रम करने से शचीन्द्र का स्वास्थ्य बिगड़ गया। औषध और पथ्यादि के सेवन से थोड़े ही दिनों में उनका स्वास्थ्य फिर ठीक हो गया। किन्तु नौकरी और व्यवसाय की शिक्षा ये दोनों एक साथ होना शचीन्द्र के लिए कठिन सा हो गया, इसलिए उन्होंने नौकरी छोड़ देने ही का निश्चय किया। इस विषय में उन्होंने अपने पूर्वपरिचित हितैषी महाजन से सलाह लेना उचित समझा। वे उनसे पत्र-व्यवहार करने लगे। शचीन्द्र और महाजन के कई एक आवश्यक पत्रों का अनुवाद यहाँ उद्धृत की जाती है।

वे अपनी पूँजी भी खो बैठते हैं तब उनकी आँखें खुलती हैं और तब वे अपनी भूल स्वीकार करते हैं। किन्तु अपना सर्वनाश करके भूल स्वीकार करना ही किस काम का। क्योंकि मूलधन नष्ट हो जाने पर भूल संशोधन का रास्ता नहीं रहता। देखता हूँ, व्यवसाय करने की तुम्हारी प्रबल इच्छा है, पर स्मरण रक्खो, केवल मनोविनोदार्थ व्यवसाय करना बड़ी भूल है। जो लोग अपनी स्वाभाविक सहिष्णुता, शिक्षा, श्रमशीलता और योग्यता पर दृष्टि न देकर केवल पराधीनताजनित दुःख से कातर होकर या वाणिज्य के द्वारा दूसरों को धनवान् होते देख कर बिना विचारे व्यवसाय में प्रवृत्त होते हैं उन्हें पछताना पड़ता है।

मेरा यह उद्देश्य नहीं है कि तुम्हें इस काम में निरुत्साह करूँ, किन्तु काम करने के पहले एक बार आगे पीछे की बात सोच लेना क्या उचित नहीं है? तुम पहले अपनी शक्ति को अच्छी तरह तौल लो; तदनन्तर जो लिखना हो मुझे लिखो।

शुभाभिलाषी
श्री......

महाजन का पत्र

कल्याणास्पद श्रीशचीन्द्र बाबू—

हम तुम्हारा पत्र पाकर प्रसन्न हुए। तुमने जो व्यवसाय-

महाजन का पत्र

कल्याणभाजन श्रीशचीन्द्र बाबू,

तुम्हारा पत्र आया। तुम्हारा उद्योग प्रशंसनीय है, इसमें सन्देह नहीं कि तुम एक उच्च विचार और उन्नत हृदय के मनुष्य हो। तुमने व्यवसाय-सम्बन्धी जो कुछ शिक्षा प्राप्त की है, उससे तुम विश्वास रक्खो, किसी न किसी दिन अवश्य कृतकार्य होगे। किन्तु तुमसे यह कहना है कि जो ज्ञान सुन कर या पुस्तकें पढ़ कर प्राप्त होता है, वह सुदृढ़ नहीं होता। कभी कभी वह ज्ञान भ्रमोत्पादक होकर कार्य्यसिद्धि में बाधा पहुँचाता है। काम करने पर जो शिक्षा प्राप्त होती है वह निर्भ्रान्त होती है।

तुम पहले कुछ दिन किसी व्यवसाय-कुशल वणिक् के पास रह कर वाणिज्य करना सीखो। जब जी लगा कर कुछ दिन वाणिज्य-सम्बन्धी काम करोगे तब तुम्हें व्यवसाय का कुछ अनुभव हो जायगा। इस प्रकार वाणिज्यकला में शिक्षित होकर थोड़ी पूँजी से साधारण व्यवसाय में प्रवृत्त होगे। इस बात का सर्वदा स्मरण रक्खोगे कि जो काम करना तुम नहीं जानते उसमें भूल कर भी हाथ न डालोगे। कितने ही प्रतिभाशाली नवयुवक बिना व्यवसायशिक्षा प्राप्त किये ही "लक्ष्मीर्वसति वाणिज्ये" इसी एक वाक्य का अवलम्बन कर झट पट दुकान खोल देते हैं। इसका परिणाम यही होता है कि लाभ के बदले

शचीन्द्र का पत्र

श्रीचरणों में निवेदन,

आपने अपने कृपापत्र में जो सब उपदेश लिख भेजे हैं, तदनुसार ही सब काम होंगे। आपका लिखना सब सही है, किन्तु मैंने बहुत दिन नौकरी करके देखा, मेरे जीवन का आधा हिस्सा नौकरी ही में कट गया पर तो भी मेरी दरिद्रता दूर न हुई। यदि मैं अपने जीवन का चौथाई भाग भी व्यवसाय में खर्च करता तो आज धनी न होने पर भी दारिद्र्य से किसी तरह कर छुटकारा पाता। मान लीजिए, कदाचित् मैं व्यवसाय में अकृतकार्य भी होता तो उससे जो शिक्षा प्राप्त होती, वही मेरे भविष्य कारबार के मूलधन का काम देती। मैं जो काम करूँगा बहुत सोच विचार करके ही करूँगा। आपकी पूर्ण सहानुभूति पाने ही पर कर्तव्य स्थिर करूँगा।

कृपाकांक्षी
शचीन्द्र

महाजन का पत्र

कल्याणभाजन,

हम तुम्हारा पत्र पाकर प्रसन्न हुए। शिक्षित व्यक्तियों का उत्साह आशाजनक होता है। इतने दिन नौकरी करके भी जो

तुम्हारे कृतकार्य्य होने की हमें कुछ कुछ आशा हो रही है। हम तुम्हारे अध्यवसाय और श्रमशक्ति से भलीभाँति परिचित हैं। किन्तु अभिज्ञता एक ऐसी चीज़ है जो शीघ्र किसी को प्राप्त नहीं होती। कोई मनुष्य किसी एक काम में असाधारण श्रम और एकाग्रता दिखला सकता है, इससे वह सभी विषयों में ऐसा करने को समर्थ होगा, इसका कोई निश्चय नहीं। जैसे कोई आदमी दस रुपया आपही ख़र्च करके उसका हिसाब ज़बानी बतला सकता है, किन्तु कल उसने कहाँ क्या सुना वह उसे आज भलीभाँति याद नहीं है इससे वह कल की सभी बातें ठीक ठीक नहीं बता सकता। तुम्हारा अध्यवसाय, श्रमशीलता और सहिष्णुता जो इस समय कई कामों में देखे जा रहे हैं, वे उसी तरह व्यवसाय में भी स्थिर रहेंगे इसका क्या प्रमाण? हम तुमसे यह सच सच कह रहे हैं कि सामान्य दुकानदार से लेकर बड़े बड़े महाजन तक को इतना परिश्रम करना पड़ता है और इतना दिमाग़ लड़ाना पड़ता है जो सबसे होना कदापि सम्भव नहीं। इसके सिवा व्यवसायियों को अपने आराम और भोग-विलास की वस्तुओं से भी किनारा कसना पड़ता है। जिनमें व्यवसायोचित श्रम नहीं, साहस नहीं, अभिज्ञता नहीं और त्यागशक्ति नहीं उन्हें इस काम में प्रवृत्त न होना ही भला है।

शुभाभिलाषी

श्री......

(१) जहाँ दुकान खोली जायगी वहाँ लोगों की संख्या कितनी है? उनकी अवस्था कैसी है? वे लोग किन चीज़ों को ज़ियादा पसन्द करते हैं?

(२) स्थानीय लोगों के अपेक्षाकृत किस वस्तु का विशेष अभाव रहता है? किस चीज़ का ख़रीदना उन्हें बहुत ज़रूरी है?

(३) जिस चीज़ की दुकान खोली जा रही है, वहाँ के रहनेवालों को उसकी कैसी ज़रूरत है? वह चीज़ वहाँ के लोगों के काम की है या नहीं?

तुमको दुकान का भाड़ा नाम मात्र का देना पड़ता है यह हमने माना, किन्तु जहाँ बिक्री कम है, वहाँ के थे भाड़े की दुकान से अधिक भाड़े की दुकान जो बहुजनाकीर्ण स्थान में है और जिसकी चीज़ें हाथों हाथ बिकती हैं, अच्छी है। मान लो, तुम्हें दुकान का कुछ भाड़ा न देना पड़े, किन्तु दुकान की चीज़ें बिकें ही नहीं, तो ऐसी दुकानदारी से क्या फल? छोटी दुकान मज़े में तब चलती है जब उसमें थोड़ी थोड़ी सभी काम की चीज़ें हों और उनकी बराबर बिक्री होती रहे। नई आमदनी से फिर ग्राहकों के पसन्द की नई नई चीज़ें ख़रीदी जायँ। जहाँ दूसरी दुकान नहीं है और दुकान भी कुछ बहुत बड़ी नहीं है वहाँ दुकान में ऐसा ही सौदा रखना उचित है कि जिसके ख़रीदे बिना लोगों का काम न चले। परचूनी और

तुम्हारे मन में इतना बड़ा साहस और उत्साह बना है, इतने दिनों तक दारिद्र्य के साथ युद्ध करके भी जो तुम अपने उच्चाभिलाष को रक्षित रख सके हो, इससे हम और अधिक प्रसन्न हैं। तथापि हम एकाएक यह नहीं कह सकते कि तुम नौकरी करना छोड़ दो। सिवा सलाह देने के और किसी तरह की सहायता हम अभी तुम्हें नहीं दे सकते। उपयुक्त समय देखकर हम तुमसे मिलेंगे।

शुभेच्छु
श्री......

महाजन का पत्र

मङ्गलालय श्रीशचीन्द्र बाबू,

तुम्हारे पत्र से विदित हुआ कि तुमने अपने ज्येष्ठ पुत्र के नाम से दुकान खोली है। व्यवसाय को तुम जितना सहज समझ बैठे हो, सच पूछो तो वह उतना सहज नहीं है। देखो, अभी आरम्भ ही में तुम एक भारी भूल कर बैठे हो। तुमने जिन सब चीज़ों को लेकर दुकान खोली है, वे वहाँ के लिए विशेष प्रयोजनीय नहीं हैं। वहाँ के लोगों को जिन चीज़ों की विशेष आवश्यकता है, जिन चीज़ों की खपत वहाँ ज़ियादा होती है इसका विचार माल ख़रीदने के पहले ही तुम्हें कर लेना उचित था। तुम्हें यह पहले ही सोच लेना चाहिए था कि—

(३) जिसे थोक देना चाहें थोड़ा थोड़ा करके भी बेच सकें।

(४) दुकान को ख़ूब साफ़ सुथरा रक्खो और बिक्री की चीज़ों को दुकान में इस तरह सजा कर रक्खो जिसमें लोगों की दृष्टि बरबस उस ओर खिंच जाय। दुकान में कुछ ऐसी विशेषता ज़रूर रखनी चाहिए कि उस पर एक बार नज़र पड़ने पर फिर लोगों को दुबारा देखने की लालसा बनी रहे।

(५) जो सौदा अधिक दिनों तक रखने पर भी ख़राब न हो वह सस्ते भाव में ख़ूब अधिक ख़रीद कर रख देना चाहिए और जब उसका भाव महँगा हो तब सुयोग पाकर बेच डालना चाहिए।

शुभाभिलाषी
श्री.........

महाजन का पत्र

कल्याणभाजन,

तुम्हारा पत्र पाया। अबकी बार तुमने बहुत अच्छी जगह दुकान खोली है। सौदा भी सभी उपयुक्त रक्खे हैं। इस तरह तुमने बुद्धिमानों का सा काम किया है। इस कौशल से इतना अवश्य प्रकट होता है कि तुमने व्यवसाय-सम्बन्धी लाभप्रद उपदेशों के अनुसार काम करने की योग्यता प्राप्त कर

पन्सारी की दुकान इसी श्रेणी के अन्तर्गत हैं। पर तुम्हारा उच्चाभिलाष इस साधारण दुकानदारी ही में न छिप रहे इसका भी स्मरण रखना।

शुभाभिलाषी
श्री......

महाजन का पत्र

कल्याणभाजन,

बहुत दिनों से तुम्हारा पत्र न पाने के कारण चित्त चिन्तित था। तुम्हारी दुकान का काम अच्छी तरह नहीं चलता यह जान कर खेद हुआ। अगर कोई बाबू दुकान ख़रीदना चाहते हैं तो उनके हाथ दुकान बेच दो, कुछ अधिक हानि होने पर भी हताश न हो। व्यवसाय से हाथ न खींचोगे। चुप चाप बैठ रहने से संसार का काम नहीं चलता। व्यवसाय में हानि होने से भविष्य के लिए अच्छी शिक्षा मिलती है। हानि होने ही पर लोग साव-धानी से काम करना सीखते हैं। अब नई दुकान खोलने के पहले इन सब बातों पर ज़रूर ध्यान रक्खोगे।

(१) दुकान का सौदा ऐसा होना चाहिए जिसकी ज़रूरत अमीर से लेकर ग़रीब तक सभी को हो।

(२) जो नष्ट होने योग्य न हों।

नहीं होते बल्कि दुकान के प्रतिकूल नये नये सैकड़ों शत्रुओं की सृष्टि करते हैं। कारण यह कि भली बुरी दुकान का प्रधान विज्ञापन ग्राहकगण ही होते हैं। जो दुकानदार ग्राहकों को धोका नहीं देते उनकी दुकान में ग्राहकों की भीड़ लगी रहती है; किन्तु जो चिकनी चुपड़ी बातों में ग्राहकों को लुभा कर धोका देते हैं उन वञ्चक दुकानदारों के मुँह की ओर ग्राहक नज़र उठा कर देखते तक नहीं। वाणिज्य कुशल महाजन रसल्सेज का कथन है कि "सदुपाय की अपेक्षा असदुपाय से अधिक धन प्राप्त हो सकता है किन्तु वह धन देर तक ठहरता नहीं। जब जन-समाज में उस असद् व्यवहार की ख्याति हो जाती है तब उन असद् व्यवहारावलम्बी महाजनों को प्रथम लाभ की अपेक्षा कहीं बढ़ कर हानि उठानी पड़ती है, हमेशा के लिए लोगों को उनकी दुकान का विश्वास उठ जाता है। किन्तु जो दुकानदार सचाई के साथ सौदा बेचता है उसकी दुकान की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है"।

बन्धुबान्धव और आत्मीयगणों की पृष्ठपोषकता पर निर्भर हो कर दुकान न खोलनी चाहिए। उनका मधुरालाप केवल स्वार्थ से भरा होता है। वे यही चाहते हैं कि "उनका कोई मित्र दुकान खोले तो उनका काम बन जाय" मित्र की दुकान से सभी चीज़ें उन्हें उधार मिल सकेंगी, रह सह कर दाम चुकावेंगे। अन्यान्य ग्राहकों से उन्हें सस्ते दर पर चीज़ लेने का

नहीं होते बल्कि दुकान के प्रतिकूल नये नये सैकड़ों शत्रुओं की सृष्टि करते हैं। कारण यह कि भली बुरी दुकान का प्रधान विज्ञापन ग्राहकगण ही होते हैं। जो दुकानदार ग्राहकों को धोका नहीं देते उनकी दुकान में ग्राहकों की भीड़ लगी रहती है; किन्तु जो चिकनी चुपड़ी बातों में ग्राहकों को लुभा कर धोका देते हैं उन वञ्चक दुकानदारों के मुँह की ओर ग्राहक नज़र उठा कर देखते तक नहीं। वाणिज्य कुशल महाजन रसल्सेज का कथन है कि "सदुपाय की अपेक्षा असदुपाय से अधिक धन प्राप्त हो सकता है किन्तु वह धन देर तक ठहरता नहीं। जब जन-समाज में उस असद् व्यवहार की ख्याति हो जाती है तब उन असद् व्यवहारावलम्बी महाजनों को प्रथम लाभ की अपेक्षा कहीं बढ़ कर हानि उठानी पड़ती है, हमेशा के लिए लोगों को उनकी दुकान का विश्वास उठ जाता है। किन्तु जो दुकानदार सचाई के साथ सौदा बेचता है उसकी दुकान की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है"।

बन्धुबान्धव और आत्मीयगणों की पृष्ठपोषकता पर निर्भर हो कर दुकान न खोलनी चाहिए। उनका मधुरालाप केवल स्वार्थ से भरा होता है। वे यही चाहते हैं कि "उनका कोई मित्र दुकान खोले तो उनका काम बन जाय" मित्र की दुकान से सभी चीज़ें उन्हें उधार मिल सकेंगी, रह सह कर दाम चुकावेंगे। अन्यान्य ग्राहकों से उन्हें सस्ते दर पर चीज़ लेने का

हो तो दूसरे के हाथ का लिखा हिसाब नित्य देख लेना बहुत आवश्यक है।

प्रत्येक दुकानदार को समयनिष्ठा, नियमनिष्ठा और वाक्य-निष्ठा पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। प्रति दिन सवेरे नियमित समय पर दुकान खोलनी चाहिए और दुकान बन्द करने का भी समय निर्धारित कर लेना चाहिए। सभी ग्राहकों के साथ एक सा व्यवहार रखना उचित है।

यह बात पहले कही जा चुकी है और फिर भी कही जाती है कि प्रत्येक ग्राहक के साथ सुजनता प्रकाश करनी चाहिए। सुजनता या साधुता ही दुकानदारों को कृतकार्य होने का मूलमन्त्र है। कोमल स्वभाव और मीठी बातों में लोगों को आकृष्ट करने की जो शक्ति है वह और किसी में नहीं है। महात्मा इमर्सन साहब ने कहा है कि "सुन्दर स्वरूप की अपेक्षा सुन्दर स्वभाव अच्छा है। कारण यह कि सुन्दर स्वरूप, चित्र और प्रस्तरादि निर्मित मूर्तियों की अपेक्षा नयनों को विशेष आनन्द देता है किन्तु सुन्दर स्वभाव फूलों की सुगन्धि की तरह नयनों के अगोचर होकर भी मन को हर लेता है"।

शुभाकांक्षी
श्री......

धन-प्राप्ति के साथ तुममें आलस्य, विलास और अभिमान नाम मात्र को भी नहीं है, यह भी हम सुन चुके हैं। तुम्हारी इस संयमशक्ति का संवाद पाकर हम अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्नति के आरम्भ ही में जो असंयमी होकर एकाएक बड़ा आदमी बनने और सभ्य समाज में गण्य मान्य होने के लिए आतुर हो उठते हैं वे वैसे होने नहीं पाते।

हमने तुम्हें किसी पत्र में लिखा था कि हम उपयुक्त समय पाकर तुमसे सम्मिलित होंगे। वह समय अब आया है। हम दूसरे पत्र में सब हाल लिखेंगे।

शुभाकांक्षी

श्री······

शचीन्द्र का पत्र

ोचरणों में सविनय निवेदन।

मैं एक साथ आपके दो पत्र पाकर अत्यन्त अनुगृहीत हुआ। र दीर्घदर्शी हैं। आपने मेरे अज्ञातवास का जो कारण अनुमान ा है वह ठीक है। आप मेरे साथ सम्मिलित होने की इच्छा ट करते हैं मैं इसका भाव न समझ सका। आपका कारबार न विस्तृत है। आपकी दुकान में सैकड़ों कर्मचारी काम ते हैं। करोड़ों रुपये का व्यापार होता है। मैं एक साधारण

महाजन के घर में शचीन्द्र का आगमन

आज सात आठ दिन हुए, शचीन्द्र सकुटुम्ब आये हैं और महाजन के मकान में ठहरे हैं। शचीन्द्र यह सुन कर बहुत दुःखी हुए कि महाजन के न स्त्री है और न कोई सन्तान है। महाजन का इतना बड़ा मन्दिर बिलकुल परिवारहीन है। दास-दासियों को सानुनय आज्ञा के वशवर्ती देख शचीन्द्र की सहधर्मिणी और सन्तान गण सभी बड़ी प्रसन्नता से रहने लगे। मालूम होता है, वृद्ध महाजन की आज्ञा पाकर ही वे दास-दासी-गण शचीन्द्र के परिवार को अपने मालिक के परिवार की तरह मानने लगे। शचीन्द्र को दो दिन से महाजन से भेट नहीं हुई है। इससे वे उदास होकर महाजन के इन्द्रालय तुल्य भवन की एक सुसज्जित कोठरी में बैठ कर तरह तरह की चिन्ता करने लगे। इसी समय महाजन कागज़ का बंडल हाथ में लिये वहाँ आ पहुँचे। वे शचीन्द्र को चिन्तित देख कर मुसकरा कर बोले, "हम दो दिन से तुम्हारी कुछ भी खोज ख़बर न ले सके, इन्हीं कागज़ों के उधेरबुन में लगे थे। तुम इन सब कागज़ों को अच्छी तरह पढ़ जाओ। हम कोठी से अभी आही रहे हैं।" यह कह कर महाजन कागज़ का बंडल शचीन्द्र के हाथ में देकर चले गये।

गल्ले का व्यापार करता हूँ। मुझे अभी इन सब बातों के विचारने की कोई आवश्यकता नहीं। आपकी आज्ञा ही इस समय सर्वथा शिरोधार्य है। हुंडी मिल गई। यहाँ की दुकान समेट कर मैं शीघ्र ही सकुटुम्ब आपके दर्शनार्थ यात्रा करूँगा। आपने यथार्थ ही कहा है, मैंने इतने दिनों में केवल दूकान और आढ़त का काम सीखा है। अभी मुझे वह शिक्षा प्राप्त नहीं हुई कि करोड़ों रुपये के कारबार को योग्यतापूर्वक चला सकूँ। आपकी सेवा में रहकर काम करना सीखूँगा इससे बढ़कर मेरे लिए आनन्द का विषय और होही क्या सकता है? मैं इस सुयोग को किसी तरह हाथ से न जाने दूँगा।

आपने मुझे जितना वेतन देने की इच्छा प्रकट की है, वह मेरे वर्तमान मासिक आय से कम नहीं है अतएव आपकी आज्ञा पालन करने में मुझे किसी तरह की बाधा नहीं है।

मैं यहाँ से जिस तारीख़ को चलूँगा वह मैं आपको दूसरे पत्र में लिखूँगा।

कृपाकांक्षी
शचीन्द्र

किस जगह रहना है, किसके सिपुर्द क्या काम है, किस गोदाम में कौन सा माल है, कौन कुली कहाँ बैठ कर क्या काम करता है, कारख़ाने में कौन चीज़ कहाँ रक्खी है, कौन जगह ख़ाली पड़ी हुई है ये सब बातें तुम्हें इस नक़शे से मालूम हो जायँगी। इन सब पर दृष्टि रखनी होगी। जिन लोगों के साथ तुम्हारा सम्पर्क होगा, उनमें कौन कहाँ रहता है, किसकी कैसी नैतिक अवस्था है, कौन परिश्रमी है, कौन आलसी है, कौन दुष्टस्वभाव का है, कौन झगड़ालू है, कौन नेकचलन है, कौन बदचलन है, कौन क्रोधी है, कौन सहनशील है, कौन तीक्ष्णबुद्धि है, कौन मन्द-बुद्धि है, कौन हृदय से कारबार की उन्नति के लिए सप्रयत्न रहता है, कौन लापरवाई से काम करता है, और कौन आदमी किस काम के उपयुक्त है; इन सब बातों का बराबर तुम्हें गुप्त-रीति से अनुसन्धान रखना होगा। इन एक हज़ार कर्मचारिगण और दो हज़ार कुली मज़दूरों के काम तुम्हें चारों ओर घूम घूम कर देखने होंगे। तुम्हें अपनी दृष्टि को इन हज़ारों कर्मचारियों के काम पर सर्वदा सतर्क रखनी होगी। जहाँ एक घड़ी के लिए भी तुम अपनी आँख मूँदोगे तहाँ तुम्हारी इस असावधानता का सुयोग लेने में वे कर्मचारिगण कभी न चूकेंगे। उन हज़ार कर्म-चारियों के दो हज़ार नेत्र बराबर तुम्हारे चित्त की गति को देखते रहेंगे। जितना ही तुम उनके कामों को सतर्कदृष्टि से देखोगे उतना ही वे भी तुम्हारी भूल को सतर्कदृष्टि से देखेंगे।

किस जगह रहना है, किसके सिपुर्द क्या काम है, किस गोदाम में कौन सा माल है, कौन कुली कहाँ बैठ कर क्या काम करता है, कारख़ाने में कौन चीज़ कहाँ रक्खी है, कौन जगह ख़ाली पड़ी हुई है ये सब बातें तुम्हें इस नक़शे से मालूम हो जायँगी। इन सब पर दृष्टि रखनी होगी। जिन लोगों के साथ तुम्हारा सम्पर्क होगा, उनमें कौन कहाँ रहता है, किसकी कैसी नैतिक अवस्था है, कौन परिश्रमी है, कौन आलसी है, कौन दुष्टस्वभाव का है, कौन झगड़ालू है, कौन नेकचलन है, कौन बदचलन है, कौन क्रोधी है, कौन सहनशील है, कौन तीक्ष्णबुद्धि है, कौन मन्द-बुद्धि है, कौन हृदय से कारबार की उन्नति के लिए सप्रयत्न रहता है, कौन लापरवाई से काम करता है, और कौन आदमी किस काम के उपयुक्त है; इन सब बातों का बराबर तुम्हें गुप्त-रीति से अनुसन्धान रखना होगा। इन एक हज़ार कर्मचारिगण और दो हज़ार कुली मज़दूरों के काम तुम्हें चारों ओर घूम घूम कर देखने होंगे। तुम्हें अपनी दृष्टि को इन हज़ारों कर्मचारियों के काम पर सर्वदा सतर्क रखनी होगी। जहाँ एक घड़ी के लिए भी तुम अपनी आँख मूँदोगे तहाँ तुम्हारी इस असावधानता का सुयोग लेने में ये कर्मचारिगण कभी न चूकेंगे। उन हज़ार कर्म-चारियों के दो हज़ार नेत्र बराबर तुम्हारे चित्त की गति को देखते रहेंगे। जितना ही तुम उनके कामों को सतर्कदृष्टि से देखोगे उतना ही वे भी तुम्हारी भूल को सतर्कदृष्टि से देखेंगे।

की सेवा में सभी रहना चाहते हैं। किन्तु अन्यायी मालिक के आश्रयवर्ती हो कर रहना कोई पसन्द नहीं करता। यहाँ एक बात का स्मरण हो आया। एक बहुदर्शी व्यवसाय-कुशल महाजन का कथन है कि "तुम चाबुक बराबर अपने हाथ में लिये रहो। किन्तु उसका व्यवहार न करो तभी अच्छा है" हमने स्वयं इस वाक्य की परीक्षा लेकर देखा और सत्य पाया।

शचीन्द्र—"इतने लोगों के काम पर एक ही साथ कैसे नज़र रक्खी जा सकती है? एक ही समय में सब पर दृष्टि रखना तो असम्भव सा प्रतीत होता है"।

महाजन—"ठीक है, किन्तु उसका एक बहुत ही सहज उपाय है। कार्यालय ऐसा होना चाहिए जिसके बीच के कर्मचारियों के बैठने के लिए एक आयतक्षेत्राकार वृहत् प्रकोष्ट (कोठरी) रहे जिसमें योग्यतापन्न कर्मचारियों के बैठने की पूरी जगह हो। कर्मचारियों को इस तरह से बिठलाना चाहिए जिस में कोठरी के किसी एक प्रान्त में खड़े होने पर समस्त कर्मचारियों के ऊपर दृष्टि पड़ सके। कार्यालय के अध्यक्ष किंवा प्रधान कर्मचारी को अपने बैठने की जगह ऐसी निर्धारित करनी चाहिए, जिसके पीछे किसी कर्मचारी के बैठने की जगह न रहे। सामान्य कर्मचारिगण स्वतन्त्र रूप से भिन्न भिन्न कोठरियों में बैठ कर काम कर सकते हैं। किन्तु आवश्यकता रहते या न रहते जो कार्यनिरीक्षक हैं उन्हें बीच बीच में उठ कर सभी

की सेवा में सभी रहना चाहते हैं। किन्तु अन्यायी मालिक के आश्रयवर्ती हो कर रहना कोई पसन्द नहीं करता। यहाँ एक बात का स्मरण हो आया। एक बहुदर्शी व्यवसाय-कुशल महाजन का कथन है कि "तुम चाबुक बराबर अपने हाथ में लिये रहो। किन्तु उसका व्यवहार न करो तभी अच्छा है" हमने स्वयं इस वाक्य की परीक्षा लेकर देखा और सत्य पाया।

शचीन्द्र—"इतने लोगों के काम पर एक ही साथ कैसे नज़र रक्खी जा सकती है? एक ही समय में सब पर दृष्टि रखना तो असम्भव सा प्रतीत होता है"।

महाजन—"ठीक है, किन्तु उसका एक बहुत ही सहज उपाय है। कार्यालय ऐसा होना चाहिए जिसके बीच के कर्मचारियों के बैठने के लिए एक आयतक्षेत्राकार वृहत् प्रकोष्ट (कोठरी) रहे जिसमें योग्यतापन्न कर्मचारियों के बैठने की पूरी जगह हो। कर्मचारियों को इस तरह से बिठलाना चाहिए जिस में कोठरी के किसी एक प्रान्त में खड़े होने पर समस्त कर्मचारियों के ऊपर दृष्टि पड़ सके। कार्यालय के अध्यक्ष किंवा प्रधान कर्मचारी को अपने बैठने की जगह ऐसी निर्धारित करनी चाहिए, जिसके पीछे किसी कर्मचारी के बैठने की जगह न रहे। सामान्य कर्मचारिगण स्वतन्त्र रूप से भिन्न भिन्न कोठरियों में बैठ कर काम कर सकते हैं। किन्तु आवश्यकता रहते या न रहते जो कार्यनिरीक्षक हैं उन्हें बीच बीच में उठ कर सभी

जब वे भृत्यगण तुम्हारी कोई त्रुटि देख पावेंगे तब वे अपनी त्रुटि का संशोधन करना उतना आवश्यक न समझेंगे। यदि कर्मचारियों से अनजान में कोई भूल हो जाय तो उन पर ज़्यादा कड़ाई न कर मीठी बातों में उन्हें समझा देना चाहिए जिस में आयन्दा फिर वे ऐसी भूल न करें। छोटे से बड़े तक जितने अधीन कर्मचारी हों सभी के साथ सुजनता प्रकाश करनी चाहिए। जब उनके साथ तुम कोमल व्यवहार करोगे तब वे अपने कामों से स्वयं तुम्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा करेंगे। जैसे मालिक अपने को भद्र समझे, वैसे ही उसे अपने अधीन कर्मचारियों को भी समझना उचित है। वे लोग मासिक वेतन के बदले काम करने आते हैं न कि अपनी इज़्ज़त गवाँने या बिकने आते हैं। अतएव कर्मचारियों के यथोचित सम्मान का ख़्याल अवश्य रखना चाहिए। उनसे अपमान सूचक कोई ऐसी बात न कहनी चाहिए जिससे उनके हृदय में कड़ी चोट पहुँचे। मालिकों के निकट एकदम नम्र हो कर भी रहना ठीक नहीं है और न अपने काम में आलस्य दिखलाना ही ठीक है, इससे सम्भव है कि नौकर भी अपने कामों में सुस्ती दिखलाने लग जाय। मालिक की प्रकृति कुछ कठोर देख कर उन्हें अपने मालिक के नाराज़ होने का भय बना रहता है, इससे बड़ी सावधानी के साथ अपना काम करते हैं। मालिक को पक्षपातरहित और न्याय-परायण होना चाहिए क्योंकि पक्षपातशून्य न्यायशील मालिक

के साथ वाद-विवाद या हँसी दिल्लगी कभी न करना चाहिए। किन्तु सुजनता का वर्ताव सभी काल में सभी के साथ रखना उचित है। जिसमें सब लोग तुम्हारी मीठी बातों और विशुद्ध आचरण से तुम पर प्रेम प्रकट करें।

ऋद्धिलाभ

शचीन्द्र झट पट स्नान-भोजन करके फिर महाजन के पास आकर बैठे। कुछ देर तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। तदनन्तर महाजन ने कहा—"वाणिज्य-व्यवसाय ठीक नदी के प्रवाह की तरह चञ्चल है। नदी के प्रखर प्रवाह में विरुद्ध गति से तैर कर किनारे लगना जैसा कठिन है वैसाही कठिन व्यवसाय-प्रवाह में गिरे हुए महाजनों को अपने ठिकाने की जगह पर आना कठिन है। धन बात की बात में हाथ से निकल जाता है, किन्तु जो धन नष्ट होगया है; जो सम्पत्ति हाथ से निकल गई है उनका पुनर्लाभ करना बड़ा ही कठिन होता है। बड़े बड़े महाजनों का दिमाग़ भी व्यवसाय के कठिन प्रश्नों का जवाब हल करने में चकरा जाता है तब साधारण लोगों की तो कुछ बात ही नहीं। इस व्यवसायक्षेत्र में असाधारण शक्ति, लगातार परिश्रम, अनन्यसाधारण साहस और स्थिर-बुद्धि की बड़ी आवश्यकता है। व्यवसाय के कामों में ज़रा सी ढिलाई और

कोठरियों में घूम फिर आना चाहिए। आँखों के सामने जितना काम सम्पन्न होता है, परोक्ष में उसका आधा होने में भी सन्देह है। वही तत्त्वावधायक प्रबन्धकर्ता अच्छे हैं जो अपने अधीन कर्मचारियों को प्रसन्न रख कर उनसे आशानुरूप काम लेना जानते हैं।

व्यवसाय का काम अच्छी तरह चलने से उसका परिणाम शीघ्र ही प्रकट हो जाता है, किन्तु व्यवसाय-सम्बन्धी ख़राब कामों का परिणाम देर से जाना जाता है। व्यवसाय का कौन सा काम बिगड़ रहा है इसकी बराबर खोज ख़बर लेते रहना चाहिए। जब किसी काम के बिगड़ने का ठीक ठीक पता लग जाय तब अपने अधीन योग्य कर्मचारियों के साथ खुद परिश्रम करके उसे सँभालना चाहिए। जो कर्मचारी जी लगा कर ईमानदारी के साथ काम करता हो उसकी तरक़्क़ी के लिए उसका नाम नोटबुक में लिख लेना चाहिए और यथा सम्भव उसकी वेतन-वृद्धि कर देनी चाहिए जिससे उसका उत्साह दिन दिन बढ़ता जाय तथा वेतनवृद्धि के लालच से और कर्मचारी भी जी लगा कर काम करें। जिस कर्मचारी का काम बहुत ख़राब देखो, समझो वह उस काम के लायक़ नहीं है अथवा उसे वह काम पसन्द नहीं है, ऐसे व्यक्तियों को उनके उपयुक्त काम देना चाहिए। यदि उसे भी वे ठीक ठीक न कर सकें तो उन्हें पदच्युत कर देना ही अच्छा है। कर्मचारियों

महाजन—"नहीं शचीन्द्र, हम अब कुछ न देखेंगे, न अपने हाथ में कुछ काम ही रक्खेंगे। हम केवल तुम्हारे भविष्य की आशा और तुम्हारे सन्तानों की ही देख रेख करेंगे। हम उनकी शिक्षा का भार अपने हाथ में लेंगे। यह लो, कारबार के काग़ज़ात, कोठी की कुंजी और मेरी दिनचर्य्या-बही (डायरी) यह बही तुम्हारे बड़े काम की है, इसमें तुम्हें व्यवसाय और उसके चलाने के अनेक संकेत दृष्टि-गोचर होंगे"।

महाजन ने वे सब ज़रूरी काग़ज़ात, कुंजियों के गुच्छे और पुस्तकें आदि जो उनके पास मौजूद थीं, शचीन्द्र के हाथ में दे दीं। शचीन्द्र का हाथ कुछ काँप उठा और उन अस्सी वर्ष के वृद्ध महाजन की दोनों आँखों से आँसू बह कर उनकी ठोढ़ी तक लटकती हुई लम्बी सफ़ेद दाढ़ी पर होते हुए नीचे टपकने लगे। महाजन ने बड़े स्नेह से शचीन्द्र का हाथ पकड़ कर कहा। सुनो शचीन्द्र, हमने तुम्हें परीक्षा की आग में भलीभाँति जाँच कर विशुद्ध कर लिया है तब आज तुम्हें इस अतुल सम्पत्ति के साथ व्यवसाय-सम्बन्धी कामों के उच्चासन पर बैठाया है। यदि इस काम में तुम अपनी अयोग्यता दिखलाओगे तो हमें अपनी भ्रांति स्वीकार करनी पड़ेगी और तुम्हारे पिता के चिर-संचित यश और प्रतिष्ठा में कलङ्क लग जायगा।" शचीन्द्र की आँखों में प्रेमाश्रु भर आये। उन्होंने कुछ कहना चाहा, किन्तु वृद्ध ने उनकी बातों को रोक कर कहा—"शचीन्द्र, तुम मातृ-

घड़ी भर की गफ़लत से न मालूम कितनी बड़ी विपत्ति की आशङ्का आखड़ी होती है। तुम्हें इस बात का हमेशा स्मरण रखना होगा कि जो भार तुम्हारे ऊपर दिया गया है, उससे भारी प्रायः किसी काम का भार नहीं है। यह मनुष्यों की सेवा के लिए सर्वप्रधान क्षेत्र है, यही देवपूजा का उत्कृष्ट मन्दिर है। किसी एक गणित-शास्त्र-विशारद या वैज्ञानिक को किसी गूढ़तम जटिल प्रश्न के विचारने में जो एकाग्रचित्त होकर मस्तिष्क की परिचालना करनी पड़ती है, उसकी अपेक्षा उन महाजनों को जो सैकड़ों कर्मचारियों के तत्त्वावधायक हैं, सैकड़ों के भाग्यविधाता और अन्नदाता हैं, कुछ कम मस्तिष्क की चालना नहीं करनी पड़ती। यदि दो दिन भी उनके व्यवसाय का काम बन्द हो जाय या व्यवसाय-सम्बन्धी कोई काम उठा दिया जाय तो न मालूम कितने ही लोग निरुपाय होकर एक मुट्ठी अन्न के लिए जहाँ तहाँ घूमने लग जायँ। निराश्रय होने पर प्रायः लोग चोरी, डकैती, लूट और हत्या आदि जघन्य वृत्तियों से पेट पालते हैं। महाजनी कारबार की ज़िम्मेवरी कुछ सामान्य न समझो। जिन में यह ज़िम्मेवरी लेने की शक्ति न हो वे इस काम में न उलझें। कहो शचीन्द्र, मेरी बातों का मर्म तो तुम समझ रहे हो न" ?

शचीन्द्र—"जी हाँ, भलीभाँति समझ रहा हूँ। तो क्या आप मेरे ऊपर सम्पूर्ण भार देकर निश्चिन्त होना चाहते हैं? क्या आप कारबार का कुछ भी अंश अपने हाथ में न रक्खेंगे?"

हीन अवश्य हो पर निकृष्ट नहीं। हमने इतने दिनों तक तुम्हें अनाथ की तरह रख छोड़ा था, तुम्हारे असह्य क्लेशों को देख कर हमारा हृदय विदीर्ण होता था, किन्तु उनको मैं किसी तरह सह्य कर लेता था। तुम हमारे आत्मबन्धु रामचन्द्र की रक्षा में थे सही, किन्तु हमारी दृष्टि हमेशा तुम पर थी। तुम्हारे ब्याह की बात से भी हम अपरिचित नहीं हैं। यह काम भी हमारे मतानुसार ही हुआ था। यदि हम पहले ही तुम्हें अपने यहाँ ले आते। यदि तुम्हें यह मालूम होता कि तुम एक धनी के लड़के हो; यदि तुम यह समझ पाते कि तुम्हें अपनी जीविका के लिए कोई चिन्ता न करनी होगी, यदि यह अतुल ऐश्वर्य पहले ही तुम्हारे हाथ में पड़ जाता तो जो तुम अभी हो वैसे कभी न हो सकते? धन्य जगदीश्वर! जिन्होंने तुम्हें योग्यता प्रदान कर हमारी कामना पूरी की। वत्स! अब जाओ, इस वृद्ध का आशीर्वाद लेकर कर्मक्षेत्र में प्रवेश करो। उस सर्वमङ्गलमय समस्त सिद्धि-ऋद्धि के देवता के चरण-कमलों में सिर नवाओ।

शान्तिः शान्तिः शान्तिः